विज्ञान गरिमा सिंधु

अंक: 72

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक 72
जनवरी–मार्च, 2010

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

4952 HRD/10—1 A

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी के माध्यम से विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित सामाजिक विषय होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें।
6. लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें।
7. लेख में प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
8. श्वेत–श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
9. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
10. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है।
11. अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट–लगा लिफाफा साथ न भेजें।
12. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है।
13. भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
14. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें :

    श्री अशोक एन सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
15. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : **ww.cstt.nic.in**
कापीराइट © 2010
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054

4952 HRD/10—1 B

संपादकीय

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा पत्रिका का 72वां अंक पाठकों/लेखकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष महसूस हो रहा है। पत्रिका अपने प्रारंभ–वर्ष 1986 से अनवरत प्रकाशित होती आ रही है। 'विज्ञान गरिमा सिंधु' वैज्ञानिक लेखों में तकनीकी व वैज्ञानिक शब्दावली का उपयोग करते हुए वैज्ञानिक लेखों का प्रकाशन करने वाली अपनी तरह की भारत की एकमात्र पत्रिका है। वैज्ञानिक अनुसंधान के नए आयामों के साथ विज्ञान–लेखन का दायरा हमारे देश में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। हिंदी भाषा में विज्ञान-लेखन करने वाले लेखकों की कमी के बावजूद अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं के मध्य 'विज्ञान गरिमा सिंधु' ने भी अपना स्थान बनाया है और आशा ही नहीं, आयोग की ओर से यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि यह पत्रिका आगे भी निरंतर पाठकों को लाभान्वित करती रहेगी।

प्रस्तुत अंक-72 में विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के 13 लेख शामिल किए गए हैं, जिनका विषय क्षेत्र आयुर्विज्ञान, कृषि विज्ञान, कोशिका विज्ञान, रसायन विज्ञान, भू–विज्ञान तक फैला है।

इस अंक को तैयार करने में जिन लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों तथा वैज्ञानिक लेखकों ने अपने लेखन संबंधी अनुभवों को लिपिबद्ध करके योगदान दिया है, उनके प्रति आयोग आभारी है।

संपादक श्री अशोक सेलवटकर, वैज्ञानिक अधिकारी, जो अनेक कठिनाइयों के बावजूद पत्रिका को उत्कृष्टता की ओर ले जाने में सफल रहे हैं, निस्संदेह प्रशंसा के पात्र हैं।

मुझे पूरा विश्वास है, कि यह पत्रिका सुधी पाठकों तथा विभिन्न स्तर की संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों तक पहुंचकर आयोग के कार्यों का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रसार करेगी। सभी को इससे संतुष्टि प्राप्त होगी, ऐसी आशा है।

(प्रो. के. बिजय कुमार)
प्रधान संपादक एवं अध्यक्ष

नई दिल्ली
मार्च, 2010

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक-72, जनवरी–मार्च 2010

प्रधान संपादक
प्रो. के. विजय कुमार
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

विशेष सहयोग
डॉ. राजेंद्र गौतम
श्री डी.पी. मिश्रा
श्री राकेशरेणु

प्रकाशन-मुद्रण व्यवस्था
डा.पी.एन. शुक्ल, स.नि.
श्री आलोक वाही
कलाकार

श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
श्री एम.के. भारल
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
'संपादक'
विज्ञान गरिमा सिंधु
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम

			पृ. सं.
1.	आयुर्विज्ञान और लेसर किरण	*डा. भृगुनंदन प्रसाद सिंह*	1
2.	उड़न राख और उसकी उपयोगिता	*डा. विजय कुमार उपाध्याय*	5
3.	संज्ञानात्मक विज्ञान : विकास की दशा–दिशा	*डा. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी*	9
4.	गन्ने के बीज के व्यवसायीकरण में ऊतक संवर्धन एवं पोलीबैग प्लान्टिंग तकनीक की उपयोगिता	*डा.आर.एस.सेंगर*	12
5.	अनोखा पृथ्वी ग्रह	*नवनीत कुमार गुप्ता*	16
6.	पारंपरिक देशी मूल के बीजों की विशेषताएं एवं उनका महत्व	*श्री जगनारायंण व सुश्री मधु ज्योत्स्ना*	19
7.	मानव जीनोम परियोजना और भारत	*शिवप्रताप सिंह, धर्मेंद्रपाल सिंह*	23
8.	कार्बन	*डा.ए.के. चतुर्वेदी*	24
9.	फलों के पेय : कितने स्वास्थ्यवर्धक	*डा.जे.एल. अग्रवाल*	27
10.	तंत्रिका मूल कोशिकाएं : आशा की नई किरण	*ईश्वरचंद्र शुक्ल, बृजेश कुमार सिंह तथा विनोद कुमार*	30
11.	ग्रहण : वैज्ञानिक तथ्य	*डा. नवीन कुमार बोहरा*	34
12.	पर्यावरण एवं प्रदूषण	*डा. राजकुमार साह*	45
13.	वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का प्रयोग	*डा. क्षमाशंकर पांडेय*	50
14.	विज्ञान समाचार	*डा. दीपक कोहली*	52
	लेखक–परिचय		55
	आयोग के प्रकाशन		56

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा देने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

आयुर्विज्ञान और लेसर किरण

• डॉ. भृगुनंदन प्रसाद सिंह

अलादीन के चिराग और उसके देव की कहानी हम लोगों ने सुनी है। कहा जाता है कि जब इस चिराग को रगड़ा जाता था तो उससे एक देव उत्पन्न होता था, जिससे मनचाहा काम कराया जा सकता था। यह तो एक कपोल कथा है। वास्तव में ऐसा होते किसी ने देखा नहीं। महाभारत और रामायण जैसे प्राचीन धर्म ग्रंथों में भी अग्निबाण का वर्णन आता है। इन बाणों को छोड़ने से मनचाहे स्थानों पर आग लगाई जा सकती थी। यह सब कुछ हमने देखा तो नहीं, लेकिन आज के विज्ञान ने इसी धरती पर और इसी जमाने में इन कल्पनाओं को साकार रूप दे दिया है। पिछले 60 वर्षों को हम विज्ञान के आविष्कारों के धमाके का युग कह सकते हैं। ऐसा ही एक धमाका हुआ था सन् 1960 में। यह धमाका था लेसर किरण के आविष्कार का। इस चमत्कारी धमाके का श्रेय अमरीकी वैज्ञानिक टी.एच. मैमन को जाता है।

लेसर किरण प्रकाश की भाँति विद्युत् चुंबकीय तरंग ही है। वास्तव में लेसर शब्द अंग्रेजी के 'एल ए एस इ आर' शब्दों को व्यक्त करता है। ये शब्द 'लाइट एम्पलीफिकेशन बाई स्टिमुलेटिड एमीसन ऑफ रेडियेशन' का परिवर्णी हैं, जिनका अर्थ है विकिरण के उत्प्रेरित उत्सर्जन द्वारा प्रकाश-प्रवर्धन। इन किरणों में अत्यधिक ऊर्जा होती है और बहुत कम फैलाव के साथ ये लाखों कि.मी. की दूरी तक जा सकती हैं। लेसर किरण में एकवर्णता, दिशिकता, संबद्धता और उच्च तीव्रता का गुण होता है जो साधारण प्रकाश में नहीं होता है। लेसर किरण हीरे जैसे कठोर पदार्थ को भी भेद सकती है।

इन्हीं विचित्र गुणों के कारण रक्षा, उद्योग, विज्ञान प्रौद्योगिकी, आयुर्विज्ञान, फोटोग्राफी, होलोग्राफी, मूल वैज्ञानिक अनुसंधान, संचार, कंप्यूटर, टेलीविजन, मौसम विज्ञान, प्रदूषण नियंत्रण आदि अनेक क्षेत्रों में इन किरणों के उपयोग ने एक नया अध्याय जोड़ दिया है। आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में तो इन किरणों ने जैसे तहलका ही मचा दिया है। इस लेख में चिकित्सा के क्षेत्र में लेसर किरण के उपयोगों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

आँखों की चिकित्सा में लेसर किरण का उपयोग

(क) दृष्टिपटल (रेटिना) की चिकित्सा

रेटिना के अपने स्थान से अलग हट जाने का इलाज करने के लिए, नेत्र-विशेषज्ञों ने कई यंत्र विकसित किए हैं। लेसर के अनुसंधान के पहले तक प्रकाश स्कंदित्र (फोटोकोगुलेटर) नामक यंत्र से हटे हुए दृष्टिपटल को अपनी जगह पर जोड़ दिया जाता था। यद्यपि इस रोग के इलाज के लिए यह यंत्र काफी प्रभावशाली था, लेकिन इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि इसके द्वारा हटे हुए दृष्टिपटल जोड़ने के लिए आधे से एक सेकंड का समय लगता था। इस अवधि में रोगी पलक झपका देता था तो शल्य-चिकित्सा असफल हो जाती थी। लेसर के अनुसंधान के बाद एक नए यंत्र का विकास हुआ जिसे लेसर दृष्टिपटल प्रकाश स्कंदित्र (लेसर रेटीनल-फोटोकोगुलेटर)कहते हैं। इस यंत्र में ऑर्गन लेसर से प्राप्त किरणों को विशेष लेन्सों की सहायता से रेटिना के प्रभावित क्षेत्र पर केंद्रित कर दिया जाता है। इलाज का यह इतना कम समय है कि इसमें रोगी के पलक झपकने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस यंत्र द्वारा उपचार करने में रोगी को बेहोश करने की भी जरूरत नहीं होती है। लेसर फोटोकोगुलेटर की सहायता से अब तक

विश्व में आँख के इस रोग से पीड़ित लाखों रोगियों का सफल इलाज किया जा चुका है।

(ख) कॉर्निया के व्रणों (अल्सर) की चिकित्सा

लेसर किरण का उपयोग कॉर्निया में हुए व्रणों की चिकित्सा के लिए भी हो रहा है। कॉर्निया के प्रभावित क्षेत्र को फ्लोरोसिन रंजक से रंग कर आर्गन लेसर की किरण डाली जाती है। यह रंजक आर्गन लेसर किरण को अवशोषित कर लेती है, जिससे प्रभावित क्षेत्र का तापमान बढ़ जाता है। तापमान बढ़ने से पैदा हुई ऊष्मा से रोग पैदा करने वाले जीवाणु मर जाते हैं और रोगी का इलाज हो जाता है। इस तरीके में आस-पास के ऊतकों पर भी कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।

(ग) काले मोतिया एवं सफेद मोतिया का इलाज

आर्गन लेसरों का प्रयोग काले मोतिया और सफेद मोतिया के इलाज के लिए भी हो रहा है। सन् 1970 से अब तक विश्व के अस्पतालों में पंद्रह हजार से भी अधिक लेसर फोटोकोगुलेटर लगाए जा चुके हैं। इन किरणों की सहायता से मधुमेह से पैदा होने वाले आँखों के रोगों को ठीक किया जा रहा है। मधुमेह रोग में रेटिना की रक्तवाहिनियाँ बढ़ जाती हैं जिससे आदमी की नजर कमजोर होने लगती है और वह अंतत: दृष्टिहीन हो जाता है। इस रोग के उपचार में ऑर्गन लेसर प्रयोग में लाया जा रहा है। लेसर किरण को प्रयोग में लाकर लेसर-दृष्टिपटल-दर्शी भी बनाया जा चुका है।

(घ) ग्लॉकोमा की चिकित्सा में लेसर

इस बीमारी में आँख के अंदर का दाब बढ़ जाता है जिससे तंतु कोशिका का नाश होता है, फलत: आँख के देखने की शक्ति घट जाती है। आँख के अंदर के दाब को दवा के द्वारा भी घटाया जाता है लेकिन इसके प्रयोग से दूसरी तकलीफें बढ़ जाती हैं। ज्ञातव्य है कि सामान्य आँख का आंतरिक दाब 2,000 पास्कल होता है। जब यह दाब बढ़कर 3,500 पास्कल या इससे अधिक हो जाता है तो आँख की दृष्टि प्रभावित होने लगती है। न्यूयॉर्क के वैज्ञानिक नॉर्मन बाउमैन ने अपने शोध-पत्र में लिखा है कि इस बीमारी की चिकित्सा में लेसर का उपयोग अधिक प्रभावशाली है। यों इस इलाज में लगभग 5 प्रतिशत खतरे की भी संभावना है। इस बीमारी से पीड़ित एक 75 वर्षीय बूढ़े का भी इलाज लेसर के द्वारा सफलता पूर्वक किया जा चुका है।

यद्यपि लेसर किरणों का उपयोग आँख के रोगों के इलाज के लिए किया जा रहा है लेकिन यहाँ यह जान लेना जरूरी है कि ये किरणें आँखों के लिए अत्यंत घातक होती हैं। यदि 10 वाट से अधिक शक्तिशाली लेसर किरण आँख पर सीधी पड़ जाए तो व्यक्ति पल भर में दृष्टिहीन हो जाता है। अत: लेसर किरणों का प्रयोग करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वे आँख पर सीधी न पड़ें। लेसर का काम करते समय विशेष चश्मों का प्रयोग करना अतिआवश्यक है।

दंत-चिकित्सा में लेसर किरण का उपयोग

लेसर किरण का प्रयोग दंत-क्षय रोकने के लिए विश्व के कई अस्पतालों में किया जा रहा है। लेसर किरण को दाँत के प्रभावित भाग पर लेन्सों के द्वारा केंद्रित किया जाता है, जो दाँत में लगे कीटाणुओं को नष्ट कर देता है और दंत-क्षरण पर नियंत्रण हो जाता है। इस चिकित्सा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस उपचार में सारा दाँत गर्म नहीं होता है। इस तकनीक से दाँत में कंपन भी नहीं होता जैसा कि प्रचलित तरीकों से दाँत में छेद करते समय होता। लेसर किरणों से खोखले दाँतों में सीमेन्ट भरने का काम भी किया जा सकता है। लेसर से दाँतों में ऐसा सीमेन्ट भरा जा सकता हैं, जिसका गलनांक काफी अधिक होता है और उसे प्रचलित विधि से दाँतों में नहीं भरा जा सकता है। काँच के तंतुओं की सहायता से लेसर किरण को दाँत के किसी भी भाग पर केंद्रित किया जा सकता है। लेसर किरणों की सहायता से दाँतों में पैदा हुई छोटी-छोटी दरारों को सील किया जा सकता है, जिससे दाँत में कीड़ा लगने का भय समाप्त हो जाता है।

लेसर द्वारा कैन्सर का इलाज

हम लोग जानते हैं कि कैन्सर एक भयानक रोग है जिसका पूर्णरूपेण उपचार अभी तक संभव नहीं हो पाया है। कुछ प्रयोगों में यह देखा गया है कि लेसर किरणों द्वारा कैन्सर के अर्बुदों (ट्यूमरों) को आस-पास के स्वस्थ ऊतकों को बिना हानि पहुँचाए नष्ट किया जा सकता है।

मनुष्य में पाए जाने वाले दो प्रकार के कैन्सरों दुर्दम मैलानोमा तथा थायरोयडल कार्सिनोमा के उपचार के लिए रूबी लेसर प्रयोग किया गया। यह देखा गया कि 18 अर्बुदों (ट्यूमरों) में से 13 अर्बुद लेसर किरण डालने के 15 से 30 दिनों के अंदर समाप्त हो गए। एक महिला की त्वचा में मुख्य रसौली के आस-पास लगभग 60 गांठें थीं। लेसर किरण की चिकित्सा द्वारा 13 महीने में ये सभी गांठें समाप्त हो गईं।

त्वचा के 20 प्रकार के कैन्सरों में से 7 प्रकार के कैन्सरों को रूबी लेसर द्वारा ठीक किया जा सकता है। शेष 13 प्रकार के कैन्सरों के लिए दूसरी लेसर किरण का प्रयोग किया जा रहा है। लेसर किरणों को प्रयोग में लाकर फेफड़ों के कैन्सर के इलाज में काफी सफलता मिली है। इन दिनों कैन्सर के इलाज के लिए सामान्यत: नियोडिमियम यॉग तथा कार्बन डाइऑक्साइड लेसर प्रयोग में लाया जा रहा है। लेसर किरण को काँच के तंतुओं द्वारा कैन्सर की रसौली तक भेजा गया जिससे रोगी को काफी लाभ हुआ।

कार्बन डाइऑक्साइड लेसर किरणों को गर्भाशय के कैन्सर की चिकित्सा में भी प्रयोग में लाया जा रहा है। मस्तिष्क की रीढ़ की हड्डी में हुए कैन्सर को मुक्त इलेक्ट्रॉन लेसर किरण द्वारा शल्य चिकित्सा करके समाप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की शल्य चिकित्सा अन्य विधियों से संभव नहीं है। लेसर किरण द्वारा कान, नाक और गले के कैन्सर को भी समाप्त किया जा सकता है। इन किरणों के द्वारा शल्य चिकित्सा के बिना अग्न्याशय (पैन्क्रियास) के कैन्सर को ठीक किया जा सकता है। मूत्राशय के कैन्सर को इन किरणों के द्वारा समाप्त करने में काफी सफलता मिली है। हो सकता है, निकट भविष्य में ये कैन्सर किरणें चिकित्सा में वरदान सिद्ध हो सकें। इसके लिए प्रयास जारी है।

बाँझपन के इलाज में लसर

महिलाओं में बाँझपन का मुख्य कारण है– डिंब या शुक्राणु के प्रवाह में अवरोध। किसी कारणवश फैलॉपी नली संकुचित हो जाती है जिससे डिंब या शुक्राणु गर्भाशय तक नहीं पहुँच पाते। इसके कारण गर्भाधान नहीं हो पाता। लेसर किरणों की सहायता से संकुचित फैलॉपी नली की शल्य चिकित्सा भी की जा सकती है जिससे उन महिलाओं के बच्चे हो सकते हैं, जिनकी यह नली संकुचित होती है।

उदर-रोग में लेसर

उदर के रोगों में भी लेसर किरण-युक्त यंत्र गुहांतर्दर्शी (एंडोस्कोप) की सहायता से पेट और ड्यूडोनम की सूजन, व्रण (अल्सर) और कैन्सर का पता क्षण भर में हो जाता है जिससे रोगी को उचित चिकित्सा दी जाती है। इतना ही नहीं यंत्र के द्वारा व्रण से बहते हुए खून को भी बिना शल्यचिकित्सा के रोका जा सकता है। परीक्षण से पता चला है कि 95 प्रतिशत रोगी इस तकनीक से ठीक हुए हैं। इन किरणों के उपचार से पेट के कैन्सर के रोगी का जीवनकाल 15 से 20 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है।

त्वचा चिकित्सा में लेसर

लेसर किरण को मनुष्य की त्वचा पर डालकर अनेक प्रयोग किए गए हैं। प्रयोग से पता चला कि मानव शरीर पर लेसर किरण डालने से शरीर की विद्युत् चालकता बदल जाती है। ऑर्गन लेसर से निकली नील-हरित किरण को त्वचा का निशानवाला भाग अवशोषित कर लेता है। इससे जन्म के समय के निशान कम हो जाते हैं। यह चिकित्सा अभी विकसित हो रही है और इसे काफी सफलता मिल चुकी है। लेसर किरण की सहायता से त्वचा के मस्से भी दूर किए जा सकते हैं। त्वचा-रोपण में भी लेसर किरण का योगदान सराहनीय है।

लेसर द्वारा पथरी का इलाज

अमरीकी डॉ. डटलर एवं डॉ. पेरिश ने मिलकर लेसर किरण का प्रयोग कर एक तकनीक का विकास किया है जिसमें किरणों के प्रभाव से पथरी शरीर के अंदर ही गल जाएगी और उसके छोटे-छोटे कण मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकल जाएंगे। इस तकनीक में शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। पेशाब के रास्ते से यॉग लेसर और डाई लेसर किरणों को गुर्दे और मूत्राशय में भेजा जा सकता है और पैदा हुई प्रघाती तरंगों द्वारा पथरी को बारीक टुकड़ों में तोड़ा जा सकता है। इस तकनीक का परीक्षण 34 रोगियों पर किया गया जिनमें से 33 रोगी ठीक हो गए।

लेसर : नेत्रहीन की लाठी

लेसर किरणों को प्रयोग में लाकर नेत्रहीनों के लिए एक ऐसी छड़ी का निर्माण किया गया है जो उन्हें रास्ता दिखाने में मदद करती है। यह छड़ी रेडार के सिद्धांत पर कार्य करती है। इसमें छोटे-छोटे तीन गैलियम आर्सेनाइड लेसर लगे होते हैं। इसके साथ-साथ छड़ी को पकड़ने के स्थान के पास कुछ प्रकाश सेल भी लगे होते हैं। लेसरों से निकलने वाली किरणें रास्ते की रुकावटों से टकराकर परावर्तित हो जाती हैं। ये परावर्तित किरणें प्रकाश सेलों पर पड़ती हैं जिससे कुछ पिनें कंपन करने लगती हैं। इन कंपनों के आधार पर नेत्रहीन व्यक्ति को पता चल जाता है कि रास्ते में कोई रुकावट है या नहीं। यदि रास्ते में कोई रुकावट नहीं होती तो लेसर किरणें परावर्तित नहीं होतीं और नेत्रहीन व्यक्ति को किसी भी कंपन का अनुभव नहीं होता। इस छड़ी का उपयोग कई देशों में नेत्रहीन व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है।

अन्य रोगों में लेसर का उपयोग

नियोडिमियन यॉग, कार्बन डाइऑक्साइड और ऑर्गन लेसरों के अतिरिक्त रंजक, क्रिप्टॉन, एक्साइमर, धातुवाष्प आदि लेसर भी चिकित्सा क्षेत्र में प्रयुक्त किए जा रहे हैं। इन किरणों की सहायता से रक्त में उपस्थित कोशिकाओं की संख्या ज्ञात की जा सकती है। इस काम के लिए प्रतिदीप्त पदार्थ रक्त के साथ मिला दिया जाता है। इस रक्त पर क्रिप्टॉन लेसर की किरण डाली जाती है जिससे प्रतिदीप्त प्रकाश पैदा होता है। इस प्रकाश को संदेश के रूप में कंप्यूटर में भेजा जाता है। कंप्यूटर इसका विश्लेषण करके लाखों कोशिकाओं के विषय में क्षणभर में सूचना दे देता है। इन किरणों की सहायता से डी.एन.ए. और आर.एन.ए. को अलग-अलग तोड़ा जा सकता है।

लेसर किरण का उपयोग तीव्र एंजाइम क्रियाओं का अध्ययन करने में, नेत्र विभेदन शक्ति का आकलन करने में, फेफड़ों के रास्ते में हवा के बहाव में रुकावट डालने वाली रसौलियों के बाधीकरण में तथा हृदय संबंधी धमनियों की रुकावट दूर करने में किया जा रहा है।

लेसर किरणों की सहायता से पैर की अवरुद्ध रक्त वाहिनियों को खोलकर लकवा से पीड़ित रोगी को ठीक किया जा रहा है। चूंकि लेसर किरण को लेन्स की सहायता से लगभग एक माइक्रोन के क्षेत्र में केंद्रित किया जा सकता है इसलिए इससे गुणसूत्र एवं प्रोटीन परमाणुओं का अध्ययन संभव हो गया है।

जिन महिलाओं को मासिक धर्म के दौरान अत्यधिक रक्तस्राव होता है और यह काफी दिनों तक होता रहता है, उनके गर्भाशय में कुछ असामान्यताएँ पैदा हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में शल्यचिकित्सा द्वारा गर्भाशय को निकालना पड़ता है। इन दिनों इसकी चिकित्सा यॉग लेसर को उपयोग में लाकर की जा रही है। वास्तविकता तो यह है कि लेसर किरण से की जाने वाली शल्यचिकित्सा में रोगी को दर्द नहीं होता तथा चिकित्सा में बहुत कम समय लगता है और इससे खून भी नहीं निकलता है।

ooo

2

उड़न राख एवं उसकी उपयोगिता

• डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

किसी कारखाने की चिमनी से निकलने वाली राख के कणों को 'उड़न राख' कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'फ्लाई ऐश' कहते हैं। फ्लाई ऐश का निर्माण कई प्रकार के पदार्थों के जलने से होता है। परंतु इस लेख में सिर्फ उसी फ्लाई ऐश की चर्चा की जाएगी जिसका निर्माण खनिज कोयले के जलने से होता है। चूर्णित कोयले या कोयले के पाउडर को कोल फायर बॉयलर फरनेस में जलाने से जो फ्लाई ऐश निर्मित होती है, वह पाउडर के समान महीन दानेवाला पदार्थ है। यह पदार्थ फ्लू गैस के साथ प्रवाहित होता है। फ्लू गैस में प्रवाहित होने वाली फ्लाई ऐश को स्थिर विद्युत अवक्षेपित्र (इलेक्ट्रोस्टैटिक प्रिसिपिटेटर) या अन्य किसी युक्ति द्वारा संगृहीत किया जाता है।

सामान्यत: विद्युत उपयोगिता उद्योग में निम्नलिखित तीन प्रकार के कोल फायर बॉयलर फरनेस उपयोग में लाए जाते हैं-

(i) ड्राई बॉटम बॉयेलर फरनेस, (ii) वेट बॉटम बॉयेलर फरनेस तथा (iii) साइक्लोन फरनेस। परंतु इन तीनों में ड्राई बॉटम बॉयलर फरनेस सबसे अधिक प्रचलित है। जब कोयले के पाउडर को ड्राई बॉटम बॉयलर फरनेस में जलाया जाता है तो इससे उत्पन्न राख का लगभग 50 प्रतिशत अंश भट्ठी में ही रह जाता है जबकि शेष 50 प्रतिशत शत अंश फ्लू गैस के साथ फ्लाई ऐश के रूप में बाहर निकल जाता है। जब साइक्लोन फरनेस में कोयले के चूर्ण को जलाया जाता है तो 70-80 प्रतिशत राख बॉयेलर में धातुमल (स्लैग) के रूप में रह जाती है तथा सिर्फ 20-30 प्रतिशत राख ही शुष्क अवस्था में फरनेस से निकल कर फ्लू गैस में शामिल हो कर फ्लाई ऐश के रूप में बाहर निकल पाती है।

फ्लाई ऐश का रंग भूरा, धूसर (ग्रे) तथा काला हो सकता है। इसके दानों की आकृति गोल होती है। ये दाने ठोस अथवा भीतर से खोखले हो सकते हैं परंतु फ्लाई ऐश में मौजूद कार्बोनेसियस पदार्थ प्राय: नुकीली आकृति के होते हैं। संरचना की दृष्टि से फ्लाई ऐश के दाने रवाहीन होते हैं। बिटुमिनी कोयले से उत्पन्न फ्लाई ऐश के कणों का आकार 0.075 मिली मीटर से छोटा रहता है अर्थात ये कण सिल्ट के आकार के होते हैं। परंतु ये बिटुमिनी कोयले से उत्पन्न फ्लाई ऐश के कणों की तुलना मे थोड़े बड़े होते हैं। फ्लाई ऐश का विशिष्ट घनत्व 2.1 से 3.0 के बीच होता है। इसका विशिष्ट पृष्ठीय क्षेत्र (Specific surface area) 170-1,000 मीटर वर्ग प्रति किलोग्राम होता है।

फ्लाई ऐश के रासायनिक गुण इस बात पर निर्भर करते हैं कि उसकी उत्पत्ति किस श्रेणी के कोयले को जलाने से हुई है। सामान्य तौर पर चार प्रकार के कोयलों को जलाने से फ्लाई ऐश का निर्माण होता है जिनमें शामिल हैं- ऐंथ्रासाइट, बिटुमिनी कोयला, उपबिटुमिनी कोयला तथा लिग्नाइट। परंतु ऐंथ्रासाइट में राख की मात्रा नगण्य होती है। अन्य श्रेणी के कोयलों को जलाने से जो फ्लाई ऐश प्राप्त होता है उसके रासायनिक विश्लेषण से प्राप्त आँकड़ों को सारणी-I में दिखाया गया है।

सारणी-I

विभिन्न प्रकार के कोयलों को जलाने से प्राप्त फ्लाई ऐश के रासायनिक विश्लेषण के आँकड़े

रासायनिक घटक	बिटुमिनी कोयला	उप बिटुमिनी कोयला	लिग्नाइट
S_2O_2	20-60 प्रतिशत	40-60 प्रतिशत	15-45 प्रतिशत
Al_2O_3	05-35 प्रतिशत	20-30 प्रतिशत	15-25 प्रतिशत
Fe_2O_3	10-40 प्रतिशत	4-10 प्रतिशत	4-15 प्रतिशत
CaO	1-12 प्रतिशत	5-30 प्रतिशत	15-40 प्रतिशत
MgO	0-5 प्रतिशत	1-6 प्रतिशत	3-10 प्रतिशत
SO_3	0-4 प्रतिशत	0-2 प्रतिशत	0-10 प्रतिशत
Na_2O	0-4 प्रतिशत	0-2 प्रतिशत	0-6 प्रतिशत
K_2O	0-3 प्रतिशत	0-4 प्रतिशत	0-4 प्रतिशत
L.O.I ज्वलन पर हानि	0-15 प्रतिशत	0-3 प्रतिशत	0-5 प्रतिशत

भारत के विभिन्न थर्मल पावर संयंत्रों से उत्पन्न फ्लाई ऐश के रासायनिक विश्लेषण से जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं उन्हें सारणी-II में दिखाया गया है।

सारणी-II

भारत के विभिन्न थर्मल पावर संयंत्रों से उत्पन्न फ्लाई ऐश के रासायनिक विश्लेषण से प्राप्त आँकड़े

('आविष्कार', अक्तूबर 1989, पृ. 450 से साभार)

क्र. सं.	घटक हानि	बोकारो	भारत के विभिन्न थर्मल पावर संयंत्र			
			दुर्गापुर	कोरबा	इंद्रप्रस्थ	नेवेली
01	दहन पर	5.02%	11.33%	3.31%	4.90%	1-2%
02	सिलिका	50.40%	50.03%	58.30%	60.10%	45-59%
03	ऐलुमिना	30.70%	18.20%	24.60%	18.60%	23-33%
04	लौह ऑक्साइड	3.30%	10.20%	4.40%	6.40%	06-4.0%
05	कैल्शियम ऑक्साइड	3.00%	6.40%	5.40%	6.30%	5-16%
06	मैगनेशियम ऑक्साइड	0.90%	3.20%	3.90%	3.60%	1.5-5.0%
07	टाइटेनियम ऑक्साइड	0.90%	-	-	-	0.5-1.5%
08	मैंगनीज ऑक्साइड	0.30%	-	-	-	-
09	फॉस्फोरस पेन्टा ऑक्साइड	0.30%	-	-	-	-
10	सल्फेट	1.70%	-	-	-	2.5%
11	अल्कली	3.1%	-	-	-	-
12	विशिष्ट पृष्ठीय क्षेत्र (स्पेसिफिक सरफेस एरिया)	2759	1325	2084	4016	2800-3250

चूँकि कोल फायर बॉयलर का डिजाइन तथा उनमें उपयोग में लाए जाने वाले कोयले की गुणवत्ता तथा श्रेणी अलग-अलग हो सकती है, अत: अलग-अलग विद्युत्-उत्पादन कंपनियों द्वारा उत्पादित फ्लाई ऐश की गुणवत्ता भी अलग-अलग होती है। एक ही कंपनी द्वारा यदि अलग-अलग श्रेणी के कोयले का उपयोग किया जाए तो उसके द्वारा उत्पादित फ्लाई ऐश की गुणवत्ता भी परिवर्तित हो सकती है।

जिस कोल फायर बॉयलर द्वारा ऐंथ्रासाइट या बिटुमिनी कोयले का उपयोग किया जाता है, उसके द्वारा उत्पादित फ्लाई ऐश पोजोलान किस्म का होता है। इस फ्लाई ऐश में ग्लासी सिलिका तथा ऐलुमिना उपस्थित रहता है। यह फ्लाई ऐश पानी की मौजूदगी में चूने में मौजूद कैल्शियम ऑक्साइड के साथ प्रतिक्रिया कर हाइड्रेटेड कैल्शियम सिलिकेट (सिमेंटेशियस यौगिक) का निर्माण करती है।

जो फ्लाई ऐश लिग्नाइट या बिटुमिनी कोयले के जलने से प्राप्त होता है उसमें पोजोलान* के गुण तो रहते ही हैं, साथ ही साथ उसमें सेल्फ सिमेन्टिंग गुण भी पाए जाते हैं। अर्थात सिर्फ जल की उपस्थिति में ही उसमें कठोर होने तथा मजबूती प्राप्त करने की क्षमता आ जाती है।

फ्लाई ऐश को शुष्क अवस्था में सिलों में भंडारित किया जाता है। फिर आवश्यकता पड़ने पर इन सिलों से निकाल कर फ्लाई ऐश को शुष्क अथवा आर्द्र अवस्था में उपयोग में लाया जाता है। स्टॉक पाइलिंग या सैंड फिलिंग के लिए फ्लाई ऐश में इतना पानी मिलाया जाता है कि उसमें आर्द्रता की मात्रा 15 से 30 प्रतिशत तक हो जाए। सेटलिंग पौंड अथवा लैगून में ठिकाने लगाने के लिए भी फ्लाई ऐश में आवश्यकतानुसार पानी मिलाया जाता है उत्पादित फ्लाई ऐश का लगभग 75 प्रतिशत भाग पानी मिलाकर कंडीशनिंग करने के बाद उपयोग में लाया जाता है। जल मिलाकर कंडीशनिंग करने का लाभ यह है कि परिवहन के दौरान फ्लाई ऐश के कणों की हवा में उड़ने की संभावना नहीं रहती।

फ्लाई ऐश का उपयोग अनेक प्रकार से किया जा सकता है। वस्तुत: फ्लाई ऐश एक पोजोलान है। अर्थात यह सिलिसियस या अलुमिनो सिलिसियस पदार्थ है जो महीन कणों के रूप में रहता है। जल की उपस्थिति में यह कैल्शियम हाइड्रॉक्साइड से संयुक्त होकर सिमेन्टेशियस यौगिक का निर्माण करता है। अत: फ्लाई ऐश का उपयोग सीमेंट निर्माण हेतु संसार के अनेक देशों में किया जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका में प्रति वर्ष लगभग 75 लाख मीट्रिक टन फ्लाई ऐश का उपयोग सीमेंट निर्माण हेतु किया जाता है।

फ्लाई ऐश का दूसरा महत्वपूर्ण उपयोग सड़क-निर्माण के क्षेत्र में होता है। विगत लगभग सात दशाब्दियों से फ्लाई ऐश का उपयोग जी.सी.सी. (पोर्टलैंड सीमेन्ट कंक्रीट) में खनिज अधिमिश्रण के रूप में व्यापक स्तर पर होता आया है। फ्लाई ऐश का अभी सर्वाधिक उपयोग इसी कार्य के लिए किया जा रहा है। साथ ही इसका उपयोग पोर्टलैंड पोजोलान ब्लेन्डेड सीमेन्ट के एक घटक के रूप में भी काफी अधिक हो रहा है। जब फ्लाई ऐश का उपयोग खनिज अधिमिश्रण के रूप में करना हो तो यह आवश्यक है कि फ्लाई ऐश शुष्क अवस्था में हो। जब इसका उपयोग पी.सी.सी. में करना हो तो इसकी गुणवत्ता का गहराई से अध्ययन विशेष रूप से किया जाना चाहिए। जिन गुणों का अध्ययन किया जाना चाहिए उनमें फाइननेस, ज्वलन पर हानि तथा रासायनिक घटक शामिल हैं। यदि फ्लाई ऐश का उपयोग कंक्रीट में करना हो तो उसमें पोजोलेनिक प्रतिक्रियाशीलता भी पर्याप्त रहनी चाहिए।

ऐस्फाल्ट पेविंग मिश्रण में खनिज पूरक (मिनरल फिलर) के स्थान पर फ्लाई ऐश का उपयोग विगत कई वर्षों से होता आ रहा है। जो खनिज पूरक ऐस्फाल्ट पेविंग मिश्रण में उपयोग में लाया जाता है, उसके कणों का आकार 0.075 मिली मीटर से कम रहता है। ये कण पेविंग मिश्रण के छिद्रों में भर जाते हैं तथा योजक (बाइंडर) ऐस्फाल्ट सीमेंट के समंजन को बढ़ा देते हैं जिससे उसका स्थायित्व (स्टेबिलिटी) बढ़ जाता है। अधिकांश स्रोतों से प्राप्त फ्लाई ऐश खनिज संपूरक की विशिष्टियों से संबंधित ग्रेडेशन आवश्यकताओं तथा अन्य महत्वपूर्ण गुणों से युक्त पाई

*पोजोलान : Podsol तथा Podgol के रूप में लिखा जाता है। यह मृदा का एक रूप है, जिसमें बारीक कण होते हैं।

जाती है। खनिज संपूरक के रूप में फ्लाई ऐश को शुष्क अवस्था में ही उपयोग में लाया जाना चाहिए।

फ्लाई ऐश का उपयोग तटबंधों के निर्माण तथा संरचनात्मक पूरक पदार्थ के रूप में यूरोप के कई देशों में कई दशाब्दियों से होता आ रहा है। हालाँकि अन्य देशों में फ्लाई ऐश का उपयोग तटबंध-निर्माण जैसे पूरक कामों में पहले नहीं होता था, परंतु अब धीरे-धीरे अन्य देश भी इस उपयोगी पदार्थ को अपना रहे हैं। तटबंध तथा पूरक पदार्थ के रूप में फ्लाई ऐश का उपयोग प्राकृतिक मिट्टी के स्थान पर किया जाता है। इस उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि फ्लाई ऐश इष्ट आर्द्रता वाली हो अर्थात वह न तो अधिक शुष्क हो और न अधिक आर्द्र। आवश्यक आर्द्रता से युक्त फ्लाई ऐश को संघनित कर उसे इसके अधिकतम घनत्व पर लाया जा सकता है। इस स्थिति में यह सुसंघनित मिट्टी के समान काम करता है।

ooo

3

संज्ञानात्मक विज्ञान की दशा-दिशा

• डॉ. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी

समस्त जीवित प्राणी बाहरी वातावरण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। इनके कुछ व्यवहार वातावरण के प्रति जागरूकता प्रदर्शित करते हैं। जागरूकता में सम्मिलित प्रक्रियाओं के रूप में प्रत्यक्षीकरण, अर्थ-बोध प्रत्यभिज्ञा, पुन: स्मरण, अवधान, वर्गीकरण, नियोजन, समस्या-समाधान एवम् निर्णयन आदि संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को लिया जा सकता है।

संज्ञान को मनोविज्ञान में सूचना-प्रक्रमण की प्रक्रिया माना जाता है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञानी चिंतन को सूचना-प्रक्रमण का प्रकार्य मानते हैं। संज्ञान का तात्पर्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया से है। इसमें प्रत्यक्षीकरण, अवधान, स्मरण, चिंतन, अधिगम, संप्रत्ययीकरण आदि मानसिक प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है। संज्ञान में अनेक मानसिक प्रक्रियाएं समाहित होती हैं जिसमें सूचनाओं का अर्जन, संग्रहण प्रणाली में उनकी स्थापना, उनकी पुन: प्राप्ति अथवा उनके उपयोग की आवश्यकता होती है। अनेक संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं एक साथ घटित होती हैं अथवा उनके घटित होने में अल्पतम समय लगता है।

मन की कार्य प्रणाली का अध्ययन संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में किया जाता है। इसमें कृत्रिम बुद्धि के बारे में अनुसंधान किया जाता है जो कंप्यूटर-विज्ञान की एक शाखा मानी जाती है। इसमें कंप्यूटर को विभिन्न प्रकार के मानसिक प्रकार्यों, यथा समस्या-समाधान, तर्कण, निर्णयन आदि के लिए निर्देश दिए जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन ही संज्ञानात्मक मनोविज्ञान कहा जाता है। इसका उद्देश्य ऐसे प्रयोगों को संपन्न करना और ऐसे सिद्धांतों को विकसित करना है जिनसे मानसिक प्रक्रियाओं के संगठन एवं प्रकार्य की व्याख्या हो सके।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषा विज्ञान, तंत्रिका विज्ञान, समाज शास्त्र और मानव शास्त्र के अनुसंधानों से एक बहुविषयी क्षेत्र विकसित हो रहा है जिसे संज्ञानात्मक विज्ञान कहा जा रहा है। संज्ञानात्मक विज्ञान ने मूलभूत विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र स्थिति अर्जित कर ली है।

संज्ञानात्मक विज्ञान अनुसंधान का एक समकालीन क्षेत्र है जो ज्ञान की प्रकृति, इसके घटक, इसके विकास और उपयोग से संबंधित प्रश्नों के उत्तरों से विकसित हो रहा है। इस क्षेत्र के अनुसंधानकर्ता चिंतन में बाह्य जगत के आंतरिक प्रतिविधानों की भूमिका के बारे में सहमत हैं। संज्ञानात्मक वैज्ञानिक व्यक्तिगत भिन्नताओं आदि कारकों पर जोर नहीं देते हैं। इसमें अंतरविज्ञानीय अनुसंधानों पर जोर दिया जाता है। यह क्षेत्र अभी विकसित हो रहा है और विभिन्न शाखाओं की अंत:क्रियाओं की व्याख्या से महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

तंत्रिका-वैज्ञानिकों ने संज्ञानात्मक विज्ञान में अनुसंधान हेतु अनेक उपयोगी प्रविधियाँ विकसित की हैं। उदाहरण के लिए– एक्स-रे, सी.टी., पी.इ.टी., सी.टी. स्कैन, एम.आर. आइ., एफ.एम.आर.आइ.इ.जी. आदि। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि दुर्घटना, गाँठ अथवा आघात से उत्पन्न मस्तिष्क-क्षति में ऊतकों का क्षय होता है। पी.इ.टी. से सूचना मिली है कि संज्ञानात्मक कार्यों के भिन्न-भिन्न होने पर मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों के रक्त प्रवाह में वृद्धि हो जाती है।

भाषावैज्ञानिकों ने भाषा के अर्जन में भाषा के लिए आवश्यक मानसिक प्रक्रियाओं के अनुसंधान पर कार्य किया है और उसे जारी रखने को प्रोत्साहन दिया है।

कंप्यूटर-विज्ञान की सहायता से कंप्यूटर की संक्रियाओं से तुलना करके मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। हमारे संपर्क में किसी उद्दीपक के आने पर सूचना का प्रवाह घटित होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ सूचनाओं को ग्रहण करती हैं और मस्तिष्क में संगृहीत सूचनाओं से उनकी तुलना करती हैं जिसके आधार पर व्यक्ति निर्णय लेता है। इस प्रकार प्राणी में सूचना-प्रवाह तथा प्राणी एवं वातावरण में अंत:क्रिया की व्याख्या की जा सकती है। अनेक सरल मानसिक संक्रियाओं का समूहीकरण कर जटिल संज्ञानात्मक व्यवहार उत्पन्न किए जा सकते हैं।

कंप्यूटर विज्ञान की एक शाखा कृत्रिम बुद्धि के अंतर्गत पारंपरिक रूप से मनुष्यों की उच्च मानसिक प्रक्रियाओं से संबंधित कंप्यूटर कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों ने भाषा-अर्जन और समस्या-समाधान के संदर्भ में महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है। आजकल मूलभूत दृष्टिपरक प्रक्रमण के बारे मे अनुसंधान की गतिविधियाँ बढ़ रही हैं।

संज्ञानात्मक विज्ञान को मूलभूत विज्ञान के अंतर्गत माना जाता है। भविष्य में उपयोगिता के कारण सभी विकसित और कुछ विकासशील देश इसके अध्यापन और अनुसंधान को प्रोत्साहन दे रहे हैं। अपने देश में इस क्षेत्र में उल्लेखनीय शुभारंभ हो गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर में व्यवहारात्मक और संज्ञानात्मक विज्ञान केंद्र की स्थापना कर दी है। आजकल इस केंद्र में संज्ञानात्मक विज्ञान का परास्नातक स्तर पर अध्यापन और डॉक्टरेट अनुसंधान कार्यक्रम संचालित हो रहे हैं। इस केन्द्र की गतिविधियाँ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हो रही हैं।

अवधान

यह मानसिक क्रियाओं के प्रति एक प्रकार की एकाग्रता है। भारतीय दर्शन के अनुसार इसे मनोयोग, मौन जागरूकता अथवा शांत बोध कहा जा सकता है जिसमें विचारों का व्यवधान न हो।

वातावरण में व्यक्ति पर उद्दीपकों द्वारा ध्वनि, गंध, दाब, प्रकाश, ताप आदि संवेदनाओं की बौछार होती रहती है। इसी के साथ-साथ हमारे शरीर के आंतरिक संग्राहक शरीर की दशाओं को भी नियंत्रित करते रहते हैं। शरीर को अनेक सूचनाएं प्राप्त होती रहती हैं। सूचना की इस विशाल सामग्री के प्रक्रमण की क्षमता मनुष्य में बहुत सीमित होती है। इसलिए सूचना देने वाली वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण कराने वाली व्यवस्था को चयनात्मक होना पड़ता है।

अवधान के बारे में आधुनिक अनुसंधान विभिन्न प्रक्रमों, नवीन कार्यों तथा सिद्धांतों की विषय-परिधि में हो रहे हैं। मॉर्गन, किंग तथा रॉबिन्सन के अनुसार उद्दीपक या उद्दीपक समूह के प्रति चयनात्मक प्रतिक्रिया की मानसिक प्रक्रिया ही अवधान है। वुडवर्थ और श्लॉसबर्ग के अनुसार जागरूकता को केंद्रित करना ही अवधान की प्रक्रिया है। लैशमैन तथा लैशमैन एवं बटरफील्ड के अनुसार प्राणी उन्हीं उद्दीपकों की विशेषताओं का अनुभव करता है जिन पर उसका अवधान केंद्रित होता है।

उद्दीपक क्षेत्र का जितना बड़ा भाग जागरूकता में आता है, उसे अवधान केंद्र कहते हैं। अवधान केंद्र के सभी ओर हाशिए या सीमांत के उद्दीपक अवधान केंद्र में और केंद्र के उद्दीपक अवधान सीमांत में आते-जाते रहते हैं।

अवधान एक स्वायत्त केंद्रीय प्रक्रिया है। इसके प्रमुख पाँच प्रकार हैं- ऐच्छिक, अनैच्छिक, स्वभाव, विचारात्मक और संश्लेषणात्मक-विश्लेषणात्मक। अपनी इच्छा से किसी वस्तु या उद्दीपक पर अपना अवधान केंद्रित करना ऐच्छिक अवधान कहलाता है। किसी वस्तु अथवा उद्दीपक पर अवधान का अपने-आप चला जाना अनैच्छिक अथवा स्वत:स्फूर्त अवधान कहलाता है। किसी आदत, अभ्यास अथवा प्रशिक्षण के कारण किसी वस्तु या उद्दीपक की ओर अवधान जाने को अभ्यास जनित अवधान कहते हैं। जब अवधान किसी वस्तु उद्दीपक या व्यक्ति की प्रतिमा अथवा विचारों से संबंधित होता है तब उसे विचारात्मक अवधान कहते हैं। किसी उद्दीपक के विभिन्न अंगों पर अवधान केंद्रित कर उसका एकीकृत प्रत्यक्षीकरण संश्लेषणात्मक-विश्लेषणात्मक अवधान कहलाता है।

अवधान एक जटिल चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें पाँच प्रकार के समायोजन होते हैं, जो परस्पर

अंत:संबद्ध होते हैं। इनमें ग्राहक कोशिकाओं का समायोजन, सामान्य शारीरिक आकृति का समायोजन, पेशीय तनाव का समायोजन, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का समायोजन और क्रिया के प्रति विन्यास घटित होता है।

अवधान और रुचि एक ही सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। रुचियाँ व्यक्ति की अर्जित अभिप्रेरणाएं होती हैं जिनसे व्यक्ति के व्यवहार को दिशा-निर्देश प्राप्त होता है। रुचि के कारण ही व्यक्ति का अवधान किसी विशेष वस्तु या उद्दीपक की ओर जाता है। मैकडूगल ने रुचि को गुप्त अवधान और अवधान को रुचि का क्रियात्मक रूप माना है। जिन वस्तुओं या व्यक्तियों में किसी की रुचि अधिक होती है, वह उन पर अपेक्षाकृत अधिक अवधान केंद्रित करता है। इस प्रकार रुचि के कारण अवधान में चयनात्मकता पाई जाती है। उल्लेखनीय है कि अवधान एक प्रक्रिया है जबकि रुचि एक प्रवृत्ति है।

व्यस्त होने पर और एक साथ अनेक कार्य करते समय अवधान में एकाग्रता का अभाव पाया जाता है जिससे अवधान विभाजित हो जाता है। अवधान विभाजन का अर्थ है अलग-अलग कार्यों पर अवधान केंद्रण। विभाजित अवधान के कार्यों में व्यक्ति सहसामयिक रूप से अनेक सक्रिय संदेशों को ग्रहण करता है। अन्य कार्यों की अपेक्षा किसी कार्य-विशेष पर ही अवधान-केंद्रण को चयनात्मक अवधान कहा जाता है।

व्यक्ति के अवधान को आकर्षित करने वाले कारकों को अवधान के निर्धारक कहा जाता है। ये कारक उद्दीपक तथा व्यक्ति से संबंधित होते हैं। उद्दीपक की विशेषताओं के कारण अनैच्छिक अवधान तथा व्यक्ति विशेष की विशेषताओं के कारण ऐच्छिक अवधान घटित होता है।

अवधान के चार प्रमुख रूप होते हैं- विचलन, भंग, विभाजन और विस्तार। किसी उद्दीपक के अवधान में आने और निकल जाने की प्रक्रिया को अवधान-विचलन कहा जाता है। किसी मूर्त अथवा अमूर्त उद्दीपक पर अवधान केंद्रित न हो पाने अथवा उसे अवधान-केंद्र में लाने में कठिनाई का अनुभव होने को अवधान-भंग (विघ्न) कहते हैं। अलग-अलग कार्यों पर अवधान केंद्रित करने से अवधान का विभाजन हो जाता है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि अवधान-विचलन के कारण अवधान-विभाजन का भ्रम होता है। दो उद्दीपकों के मध्य अवधान-विचलन तेजी से घटित होने पर अवधान-विभाजन के भ्रम का अनुभव होता है। एक समय में एक झलक में अवधान सीमा में आने वाली वस्तुओं की संख्या को अवधान-विस्तार कहते हैं।

अवधान के केंद्र को उद्दीपकों पर अधिक समय तक बनाए रखने की प्रक्रिया सतत या संधारित अवधान अथवा सतर्कता कहलाती है। हेनरी रीड के अनुसार सतर्कता वह दशा है जब केंद्रीय तंत्रिका तंत्र अत्यधिक कार्यकुशल होता है। सतर्कता में वृद्धि और ह्रास के लिए उत्तरदायी कारक सांवेदिक, संज्ञानात्मक और भौतिक होते हैं। सतर्कता-निष्पादन पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है, जिनमें ज्ञानेंद्रियों के प्रकार, उद्दीपक का स्वरूप, सतर्कता संक्रिया की पृष्ठभूमि, प्रेक्षक की मन:स्थिति और प्रत्याशा, परिणाम-ज्ञान आदि सम्मिलित हैं। संधारित अवधान की क्रियाविधि की व्याख्या के लिए अनेक सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं। इसकी स्पष्ट समझ के लिए अधिक अनुसंधान की प्रतीक्षा है।

4

गन्ने के बीज के व्यवसायीकरण में तकनीक की उपयोगिता

• डॉ. आर. एस. सेंगर

भारत के आर्थिक विकास की दृष्टि से गन्ना एक महत्वपूर्ण फसल है। यहाँ इसकी खेती काफी बड़े क्षेत्रफल में की जाती है। उत्तरी भारत में तो अधिकतर किसान गन्ने की बुआई करते हैं। फसल की उपयोगिता को देखते हुए गन्ने के शुद्ध बीज की माँग लगातार बढ़ रही है। उल्लेखनीय है कि गन्ने से शुद्ध बीजोत्पादन और नई जातियों के बीज के जल्दी फैलाव की एकमात्र नई तकनीक ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) है। अगर इसके द्वारा उत्पादित बीज का पोलीबैग द्वारा रोपण किया जाए तो परंपरागत उत्पादन तकनीक की अपेक्षा डेढ़ से दो गुना उपज प्राप्त की जा सकती है। 'पोलीबैग प्लान्टिंग' द्वारा सामान्य फसल के रोपण में भी बहुत अच्छी फसल प्राप्त होती है। कृषि क्षेत्र में ऊतक संवर्धन तकनीक 21वीं सदी में धीरे-धीरे विभिन्न प्रसार माध्यमों से पर्याप्त लोकप्रिय हो रही है। यह एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा पोषक घोल से पौधों के किसी भी अंग के ऊतक से एक समान पौधों को विकसित किया जाता है। पादप हॉर्मोनों को पोषक घोल में उचित मात्रा में डालकर एवं उक्त घोल को जीवाणु रहित कर ऊतक संवर्धन किया जाता है। इस प्रकार विकसित सूक्ष्म पौधों को पॉली हाउस में कठोरीकरण के पश्चात खेतों एवं बगीचों में रोपित किया जाता है। अब ऊतक संवर्धन तकनीक के व्यवसायीकरण की प्रचुर संभावना नजर आने लगी है।

ऊतक संवर्धन की परिभाषा : गन्ने की ऊतक संवर्धन तकनीक को अपनाकर तैयार किए गए पौधों को 'ऊतक संवर्ध' कहा जाता है। यह गन्ने के शुद्ध बीज प्राप्त करने की नवीन एवं उत्तम तकनीक है। इस प्रकार के पौधे उच्च स्तरीय प्रयोगशाला में ही तैयार हो सकते हैं।

उत्तर प्रदेश में गन्ने की खेती में लगातर वृद्धि होने के कारण उन्नतशील नवीन विकसित प्रजातियों के बीज की कमी लगातार अनुभव की जाती रही है। पूर्व प्रचलित विधियों द्वारा ब्रीडर एवं फाउंडेशन सीड सफलतापूर्वक बढ़ाए जाने के उपरांत भी पर्याप्त मात्रा में कृषकों को गन्ने का बीज उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। नई किस्मों के तीव्र संवर्धन हेतु वैज्ञानिकों द्वारा समय-समय पर विभिन्न विधियों जैसे- एस.टी.पी., हाइड्रोपॉनिक नर्सरी से एक आँख के टुकड़ों से बुआई, बड़े चिप इत्यादि विकसित की गई। परंतु कुछ कारणों से इन्हें अपेक्षित स्तर तक प्रयोग में नहीं लाया जा सका। लेकिन अब ऊतक संवर्धन की तकनीक लोगों को आकर्षित कर रही है। ऊतक संवर्धन की सूक्ष्म प्रवर्धन पद्धति द्वारा अनेक प्रकार के पौधों का संवर्धन किया जा रहा है। अब तक विभिन्न ऊतक संवर्धन प्रयोगशालाओं में गन्ने पर किए गए शोध-कार्यों से यह संकेत मिलता है कि गन्ने में ऊतक संवर्धन तकनीक द्वारा गुणवत्ता युक्त गन्ने के बीज का विकास किया जा रहा है।

ऊतक संवर्धन पद्धति से पौध उत्पादन की तीन प्रमुख विधियां अपनाई जाती हैं। वे हैं:

1. कक्षीय पौधों के विकास द्वारा
2. अपस्थानिक पौधों के विकास द्वारा
3. कायिक भ्रूणोद्भव द्वारा

बीज गन्ना संवर्धन हेतु कक्षीय पौधों के विकास की विधि को सर्वोत्तम माना जाता है क्योंकि इस विधि द्वारा उत्पादित पौधों के गुणों में सोमाक्लोनल विभिन्नता की कम संभावना रहती है।

प्ररोह-अग्र (शूट टिप) एवं विभज्योतक (मेरिस्टेम) द्वारा पौध उत्पादन

बीज गन्ना संवर्धन हेतु प्ररोह-अग्र एवं विभज्योतक भाग उपयुक्त होते हैं। प्रक्षेत्र से 6 से 8 माह के स्वस्थ पौधों के अगोलों से ग्रोइंग प्वाइन्ट के आस-पास 8-10 से.मी. लंबे टुकड़े काटकर किसी हल्के डिटर्जेन्ट में 8-10 मिनट तक धो लेते हैं। पुन: इन टुकड़ों को पटलीय प्रवाह (लैमिनार फ्लो) के अंदर 8-10 मिनट तक 0.1 प्रतिशत मरक्यूरिक क्लोराइड के घोल से सतही विसंक्रमण कर लेते हैं। तत्पश्चात् जीवाणु मुक्त जल से 3-4 बार धोने के बाद विसंक्रमित चिमटी एवं चाकू की सहायता से 1.0-1.5 से.मी. लंबे टुकड़े ग्रोइंग प्वाइन्ट सहित काटकर ठोस अथवा द्रव एम.एस. माध्यम पर संवर्ध कर दिया जाता है। इस माध्यम में साइटोकाइनिन, ऑक्सिन एवं जिब्रैलिन की उपस्थिति आवश्यक है। प्रारंभ में ऊतक की अत्यंत धीमी वृद्धि होती है। फिनालिक्स स्राव के कारण माध्यम का रंग भूरा हो जाता है, जिससे ऊतकों की मृत्यु हो जाती है। अत: ऊतकों को प्रारंभ के 5-7 दिनों तक प्रतिदिन अथवा एक दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार ताजे माध्यम पर स्थानांतरित करना चाहिए।

पौध संवर्ध- ऊतक की वृद्धि के अनुसार लगभग 30 से 45 दिनों पश्चात् इन्हें प्ररोह बहगुणन द्रव पर स्थानांतरित कर दिया जाता है जहाँ लगभग 6 सप्ताह में नए प्ररोह विकसित होकर पौधों का गुच्छा बना लेते हैं। इन गुच्छों से पौधों को 2-3 के समूह में काटकर अलग-अलग कर लेते हैं तथा पुन: अलग-अलग जैम बोतलों में इसी माध्यम पर स्थानांतरित कर लिया जाता है। यह क्रिया प्रत्येक 10 से 15 दिन पर दोहराई जाती है। इस प्रकार एक एक्स पादप से हजारों पौधे विकसित कर लिए जाते हैं।

पौधों में जड़ विकसित करना- जड़-विहीन पौधों में जड़ विकसित करने हेतु 8-10 पौधों के समूह में उन्हें रूटिंग मीडियम पर स्थानांतरित किया जाता है। जाति के अनुसार जड़ विकसित होने में 10 से 20 दिन लग सकते हैं परंतु आमतौर पर 15 दिनों में पर्याप्त जड़ विकसित हो जाती है।

कठोरण - पर्याप्त जड़ विकसित होने के पश्चात् पौधों को जैम बोतल से निकालकर धो लिया जाता है। इसके बाद इन पौधों को आधुनिक पॉलीहाउस में छोटी-छोटी पॉलिथीन में मृदा मिश्रण (मिट्टी, कंपोस्ट, रेत बराबर-बराबर मात्रा में) भरकर लगा देते हैं। लगभग एक माह में पौधे प्रक्षेत्र पर लगाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

प्रक्षेत्र प्रत्यारोपण - एक माह के पश्चात् पौधों को प्रक्षेत्र पर 90 X 45 से.मी. की दूरी पर प्रत्यारोपित कर तत्काल पानी लगा देना चाहिए। इस प्रकार एक एकड़ हेतु लगभग 9,500 पौधों की आवश्यकता होगी।

कर्षण क्रियाएं- प्रत्यारोपण के 6 से 8 दिन बाद आवश्यकतानुसार पुन: हल्की सिंचाई करनी चाहिए। समय-समय पर खरपतवारों के नियंत्रण हेतु निराई-गुड़ाई करना चाहिए ताकि पौधों को क्षति न हो। दूसरी सिंचाई के बाद 2-3 ग्रा. प्रति पौधा यूरिया देना चाहिए। खेत में यदि कोई खाली जगह दिखाई दे तो उस स्थान पर नये पौधों की रोपाई करनी चाहिए। पर्याप्त वृद्धि होने के पश्चात् पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का कार्य किया जाता है। पौधे जब लगभग 150 से 180 से.मी. के हो जाएं तो बंधाई कर देना चाहिए।

'पॉली बैग' पद्धति द्वारा गन्ने का पौध विकास - 'पॉली बैग' पद्धति में गन्ने की एक आँख वाला टुकड़ा पॉलिथीन बैग में लगाकर तैयार किया जाता है और इस प्रकार तैयार पौधा 'पॉली बैग पौधा' कहलाता है। पॉली बैग में सामान्य बुआई की अपेक्षा बीज की मात्रा 1/3 से 1/4 (20 से 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) ही लगती है। इस पद्धति में डेढ़ से दो माह की अगेती बुआई का लाभ मिलता है। साथ ही साथ पौधे की बुआई से लगाकर डेढ़ माह की अवधि तक जमाव की अवस्था तक खेत में दी जाने वाली 3 से 4 सिंचाई और निराई की बचत होती है।

पौधशाला में पॉलिथीन की थैलियों में गन्ने के आँखों को झारी की सहायता से सिंचाई करने से बहुत ही कम पानी लगता है और अंकुरण सुनिश्चित होता है। इस प्रकार से तैयार पौधे सामान्य फसल या जड़-प्रबंध में रिक्त स्थानों की भराई हेतु भी बहुत सफल रहते हैं।

'पॉली बैग' में पौधे तैयार करना : दोमट या मटियार मिट्टी, सड़ी हुई गोबर की खाद और बालू को बराबर मात्रा में या विशेष अनुपात में लेकर अच्छी तरह मिला देते हैं। 6X5 इंच (15 से 22 से.मी.) की थैली लें। इसमें नीचे की तरफ मोटी कील से 4-5 छेद करें। दो भाग मिट्टी, एक भाग वर्मीकंपोस्ट या गोबर की खाद और एक भाग रेत आपस में अच्छी तरह मिलाकर महीन कर थैली का 3/4 भाग इस मिश्रण से भर दें। शेष 1/4 भाग गन्ने के टुकड़े लगाने के बाद भरें। पॉलिथीन बैग में भरी मिट्टी में 10 प्रतिशत बी.एच.सी. धूल (20 से 25 कि.ग्रा. एक हेक्टेयर में पौध रोपाई हेतु) को मिट्टी खाद एवं रेत का मिश्रण भरना चाहिए। एक हेक्टेयर खेत की रोपाई हेतु 74,000 थैलियों की आवश्यकता होती है।

गन्ने के स्वस्थ पौधे से एक आँख वाले टुकड़े तैयार करें। गांठ के पास के ऊपर एक इंच एवं नीचे दो से ढाई इंच छोड़कर तेज धार कत्ते से टुकड़े काटें। पारायुक्त रसायन बेगाला 6 या एमीसानान 5 के घोल (1 किलो दवा 200 लीटर पानी में) से गन्ने के टुकड़ों को उपचारित करें (काटे गए एक आँख वाले गन्ने के टुकड़ों को 10 मिनट तक घोल में डुबोना चाहिए)। उपचारित टुकड़ों को थैली के बीचों-बीच सीधे (खड़े) लगाए। टुकड़े के लंबे भाग को नीचे रखें जिससे आँख सीधे ऊपर की तरफ रहें। इससे अंकुरण जल्दी होगा। अगर आँखें खड़ी लगाने में कठिनाई हो तो आँखों को 1 इंच ऊपर और नीचे से काटकर सामान्यत: आड़ा लगाएँ। पॉलीबैग में पौधा 30 दिन में रोपण हेतु तैयार हो जाता है। पॉलीबैग में लगाने हेतु बड चिपर (गन्ने से आँख निकालने का यंत्र) द्वारा आँख निकालकर बीजोपचार उपरांत पॉलीबैग में लगा सकते हैं। इससे बीज की मात्रा केवल 35 कि.ग्रा./हेक्टेयर ही रह जाएगी। पॉली बैग में प्रयोग किए जाने वाले गन्ने को नम गर्म उपचारण संयंत्र में अवश्य उपचारित किया जाना चाहिए। इससे रोग रहित आधार बीज उत्पादित किया जा सकता है।

प्रक्षेत्र रोपण: पॉलिथीन थैलियों को अलग कर पौधों को पिंड सहित गड्ढे में उतार दें एवं मिट्टी को हल्का दबाने के उपरांत सिंचाई कर देनी चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टेयर में 15-18 हजार पौधे लगते हैं। खेत में पूर्ण रूपेण स्थापना उपरांत अच्छी बढ़त और अधिक कल्ले हेतु अतिरिक्त उर्वरक की मात्रा का प्रयोग करें। यदि संभव हो तो प्रक्षेप रोपण से पहले मृदा परीक्षण कराने के बाद भरपूर मात्रा में खेत में कार्बनिक खाद कंपोस्ट को डाल दें।

'ऊतक संवर्धन' एवं 'पॉली बैग' तकनीकों के सफल प्रयोग हेतु सावधानियाँ

- बसंतकालीन गन्ने के पौध रोपण में अग्र प्ररोह वेधक (अर्ली शूट बोरर)का प्रकोप होने की संभावना रहती है। इस कारण रोपाई के बाद थिमेट 10जी को 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर पौधों के आस-पास डालकर गुड़ाई करें और पानी देते रहना चाहिए।
- खेतों में पूर्ण स्थापना के बाद नाइट्रोजन की थोड़ी-थोड़ी मात्रा पौधे से 5-7.5 से.मी. की दूरी पर चारों तरफ देनी चाहिए। जब गन्ने के पौधे में पूरी तरह कल्ले फूट जाएं तभी मिट्टी चढ़ानी चाहिए।
- ऊतक से पौधे खेत में स्थापित हो जाएं और कल्ले निकलने वाले हों तब मातृ पौधे को नीचे से काट देना चाहिए, इससे कल्ले अधिक एवं एक समान निकलते हैं। प्रति पौधा 10-15 पौधे से अधिक प्रोत्साहित न करें। हल्की मिट्टी चढ़ाकर कल्लों का फुटाव रोकें।
- ऊतक संवर्धन और पॉलीबैग दोनों की पौध 30 से 45 दिन की अवस्था तक खेत में लग ही जाना चाहिए, नहीं तो गन्ने के पौधे में कल्ले कम निकलेंगे।

लाभ- गन्ना बीज उत्पादन के लिए ऊतक संवर्धन विधि काफी लाभकारी साबित होती है। इस विधि के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. नवीन विकसित गन्ना जाति का तीव्र कल्चर किया जा सकता है।
2. इस प्रकार विकसित पौधे से, एक समान आकार के गन्ने पैदा होते हैं और प्रारंभ से ही अंकुरण और बढ़त अच्छी होती है।
3. किसी नवीन जाति के तीव्र प्रसार होने के कारण इससे प्रक्षेत्र पर अपेक्षाकृत अधिक वर्षों तक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
4. इस विधि से उत्पादित पौधों में रोग एवं कीट लगने की बहुत कम संभावना रहती है।
5. नवीन विकसित जातियों का बीज सीमित मात्रा में होता है। अतः इस विधि से उसे अधिक मात्रा में बनाकर ज्यादा क्षेत्र में फैलाया जा सकता है।

गन्ने की फसल आनुवंशिक रूप से अत्यंत जटिल होने के कारण इस पद्धति से कल्चर पौधों में आनुवंशिक परिवर्तन की संभावना तथा अधिक उत्पादन लागत की समस्याएँ भी हैं जिन्हें नियंत्रित करने हेतु वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं ताकि इस पद्धति को और अधिक प्रभावी बनाया जा सके। इस विधि द्वारा विकसित पौधों को प्रारंभ में मूल बीज रोपणी (ब्रीडर सीड नर्सरी) हेतु प्रयुक्त किया जाना चाहिए। परिवर्धित पौधों को चिह्नित करके अलग कर लेना चाहिए। उत्तम बीज का चयन कर प्रचलित पद्धति अथवा 'पॉली बैग' विधि द्वारा फाउंडेशन एवं प्रभावित बीज विकसित किया जा सकता है। इससे पौधों के उत्पादन में बेहतर गुणों वाले क्लोन का चयन कर परीक्षण उपरांत उसे नई जाति के रूप में भी विकसित किया जा सकता है।

ooo

5

पृथ्वी : एक अनोखा ग्रह

• नवनीत कुमार गुप्ता

सौरमंडल के सभी ग्रहों में हमारी पृथ्वी अद्वितीय है। पृथ्वी ही अकेला ऐसा ज्ञात ग्रह है जो सामान्य एक-कोशीय जीव से लेकर मानव जैसे जटिल जीवों को आश्रय दिए हुए है। जीवन के विविध रूप इस ग्रह को विशिष्टता प्रदान करते हैं । यह जीवन जिसमें वनस्पति, सूक्ष्मजीव, जीव-जंतु आदि सब शामिल हैं, एक नाजुक संतुलन पर टिका है। एक ऐसा संतुलन जिसमें सभी जीव-जंतु मिलकर अपने अस्तित्व को बचाए रखते हैं या फिर यों कहें कि एक दूसरे के अस्तित्व का सहारा हैं।

सभी जीव-जंतुओं, वनस्पतियों आदि में, परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने की अद्‌भुत क्षमता है। उदाहरण के लिए– बर्फ से ढके टुंड्रा क्षेत्रों में रहने वाले उल्लू ने समय के साथ-साथ अपना आवरण ज्यादा मोटा और सफेद कर लिया जो उसे गर्म भी रखता है और शिकारियों से भी सुरक्षा प्रदान करता है। इसी तरह जब भेड़ियों ने देखा कि उनका आवास अब गर्म स्थलों में बदलता जा रहा है तो उन्होंने अपने मोटे, गर्म फर यानी मुलायम बालों की अपनी परत को त्याग दिया जिससे उनका शरीर ज्यादा तपने से बच गया। बारहसिंगा जंगल से निकलकर जब घास के मैदानों में आया तो उसे मिले लंबे पैर और उसमें तेज भागने की क्षमता विकसित हुई, जिससे इन खुले क्षेत्रों में रहने के खतरों से वह अपने आप को बचा पाया।

इसी तरह लगभग एक लाख वर्ष पहले जब मानव ने एक नई जाति के रूप में जीवन को संजोती इस दुनिया में पहला कदम रखा, तो उसने भी अपने को इन परिस्थितियों के अनुरूप ढालने के संकेत दिए। उदाहरण के लिए – आर्कटिक क्षेत्र में रहने वाले एस्किमो ने नाटा और भरा हुआ शरीर पाया जिससे वह ज्यादा गर्मी को अपने शरीर में ही रोक सकने में कामयाब हुआ।

अमेजन के वर्षा-वनों में रहने वाले आदिवासियों को प्रकृति से मिले लंबे और पतले पैर तथा बालों रहित शरीर, जिससे वे ज्यादा से ज्यादा अपने शरीर की ऊष्मा बाहर निकाल सकें। जो मानव ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं, जहां सूरज की किरणें सीधी पड़ती हैं और बहुत तीव्र गर्मी पैदा करती हैं, ऐसे क्षेत्रों में मानव शरीर को इन तेज किरणों के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए उनके शरीर को दिया गया गहरा रंग यानी मैलानिन पिगमेंट। और, जो मानव बादलों से ढके ठंडे प्रदेशों में रहते हैं, जहाँ सूरज की रोशनी इतनी कम होती है कि उनके शरीर में विटामिन के उत्पादन में गिरावट आ सकती है, तो उन्हें प्रकृति ने दिया कम मैलानिन पिगमेंट और पीली एवं फीकी त्वचा।

फिर, करीब 12,000 वर्ष पहले मानव सभ्यता ने नए गुण दिखाने शुरू किए। जब मानव को ज्यादा कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा तो उसने अपनी संरचना में बदलाव के लिए कई पीढ़ियों का इंतजार नहीं किया बल्कि उसने अपने आस-पास बदलाव शुरू कर दिया। जिस भूमि पर वह रहता था, उसने उसी भूमि में परिवर्तन करने शुरू कर दिए और जिन पशुओं व वनस्पतियों पर वह निर्भर था उनमें भी रूपांतर करना आरंभ किया।

मानव सभ्यता के सबसे पहले करीब आया कुत्ता, जो जंगली भेड़ियों का ही परिवर्तित रूप है। भेड़ियों ने मानव द्वारा किए गए शिकार से अपना पेट भरा और धीरे-धीरे मानव के करीब आते गए। वैसे हो सकता है कि मनुष्य और भेड़िये दोनो ही एक दूसरे पर निर्भर हों जैसे भेड़िये को मानव द्वारा किए गए शिकार में से अपने भोजन का हिस्सा मिलता था, हो सकता है कि भेड़िये के शिकार से मानव भी अपना पेट भरते हों।

जिस वक्त मानव पशुओं को अपने अनुरूप ढाल रहा

था और उन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर रहा था, उसी समय वह पौधों पर भी अपना नियंत्रण करने में लगा था। पहले पहल मानव ने घास के बीजों को इकट्ठा करना शुरू किया। इसी क्रम में मनुष्य ने जाना कि पके हुए बीज जो पौधे से जुड़े हों उन्हें जमा करना भूमि पर गिरे हुए बीजों को एकत्र करने की अपेक्षा ज्यादा आसान था। पौधों को बोने के लिए मानव ने अपने आस-पास की भूमि से पेड़ काटने शुरू किए और झाड़ियों को उखाड़ फेंका जिससे उसके द्वारा बोए गए पौधों को जगह और सूरज की रोशनी मिल पाए। इस तरह मानव ने खेती शुरू की और वह किसान बना।

पौधों और पशुओं के नए रूप धीरे-धीरे एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता तक फैले। मध्यपूर्व से यूरोप तक बढ़ते हुए धीरे-धीरे मानव सभ्यता ने मूलभूत परिवर्तन लाने शुरू कर दिए। जैसे-जैसे खेती की पद्धति अपनाई गई, वैसे ही मानव ने भूमि को अपने अनुरूप बदलना शुरू कर दिया। जहां घने जंगल थे, वहां अब पत्थर की बनी कुल्हाड़ियों से पेड़ काटने शुरू कर दिए गए थे। अपने पालतू कुत्तों की मदद से मनुष्य ने जंगली और बड़े जानवरों तक का शिकार शुरू किया और साथ-साथ भेड़ों, घोड़ों आदि को भी इन पालतू कुत्तों की मदद से पालतू बनाया। मानव ने अपने आवास के लिए जंगल काटे तथा अपने मवेशियों के लिए चरागाह और फसलों के लिए भूमि जुटाई।

जमीन में अपने अनुसार बदलाव करने के साथ-साथ, मनुष्य ने अपने लिए खतरनाक साबित हो सकने वाले जानवरों को मारना शुरू किया और इसी तरह कई प्रजातियां विलुप्त हो गईं, क्योंकि मानव ने अपने लिए सुरक्षित आवास की जो कल्पना की थी उसमें इन पशुओं और वनस्पतियों की कोई जगह न थी।

इसी तरह मनुष्य दूसरे पारिस्थितिक तंत्रों से पशुओं और पौधों की नई-नई प्रजातियां भी अपने पारिस्थितिक तंत्र में ले आया, जिससे उसे अलग-अलग किस्में तो मिलीं परंतु कुछ घुसपैठिया प्रजातियों ने वहां के प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ना शुरू कर दिया और कई सारी मूल प्रजातियां नष्ट हो गईं।

आज का मनुष्य भले की चाँद से भी आगे निकल गया है, पर इस क्रम में वह अपने जीवनदायक ग्रह के प्राकृतिक संसाधनों का नाश करता जा रहा है। पूरे ग्रह की जैव विविधता आज खतरे में है। हर रोज जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों की औसतन 100 प्रजातियां धरती से विलुप्त हो जाती हैं।

अगर हमें प्रकृति को सही रूप में समझना है तो प्रकृति के विभिन्न भागों की आपसी सहभागिता, संतुलन एवं निर्भरता को समझना पड़ेगा। अगर हम पूरे दृश्य पर नजर डालें तो हम भी अपने को इसी पृथ्वी और इसी जैव विविधता का हिस्सा पाएंगे। जब हम पूरी पृथ्वी पर विचरते जीवन की बात करते हैं तो हम अपनी भी बात कर रहे होते हैं। जिस तरह प्राकृतिक शक्ति, जैसे तूफान, चक्रवात आदि इस पृथ्वी का भाग होते हुए भी इस पर प्रभाव डालने की क्षमता रखते हैं, ठीक उसी तरह मानव भी अपने क्रिया-कलापों से पृथ्वी का संतुलन बिगाड़ने की क्षमता रखता है। इस समस्या पर ध्यान देना बेहद जरूरी है।

प्राकृतिक विश्व निरंतर एक बदलाव की ओर अग्रसर रहता है। वन बदलकर घास के मैदान हो गए, चरागाह रेगिस्तान बन गए, तालाब दलदल में परिवर्तित हो गए, हिमनद बढ़े और अब फिर कम होते जा रहे हैं। 1,000 वर्ष पहले, जब मानव अपने पर्यावरण को नियंत्रित करने में सफल हुआ था, वह सफलता आज अपने अंतिम दिनों में पहुंच गई है। आज हम चाहें या न चाहें, हम पूरे विश्व के हर भाग को प्रभावित कर रहे हैं। आज का मानव इतनी तेजी से बदलाव कर रहा है कि जीवों को इन बदलावों के अनुरूप अपने को ढालने का समय ही नहीं मिल पा रहा है।

पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने के लिए आज हमें फिर से इस जीवित ग्रह पर संतुलन कायम करना है जिससे बढ़ते प्रदूषण, बढ़ती जनसंख्या, घटते जलस्रोत, घटती उपजाऊ भूमि आदि पर पूरे विश्व का ध्यान केंद्रित करने के लिए और लोगों को जागरूक करने के लिए पूरे विश्व में वर्ष 2008 को 'इंटरनेशनल ईयर ऑफ प्लानेट अर्थ' यानी 'अंतरराष्ट्रीय पृथ्वी ग्रह वर्ष'- घोषित किया गया था। इस आयोजन का उद्देश्य पृथ्वी की जैव विविधता और जीवन को संजोए रखना है ताकि यहां जीवन सदैव मुस्कराता रहे।

ooo

6

देशी मूल के बीज : विशेषताएँ और महत्व

• जगनारायण
• मधुज्योत्स्ना

आधुनिक कृषि के विकास की कहानी मानवीय सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास की ही कहानी है। हमारे पूर्वज अपनी प्रारंभिक अवस्था में जंगली जानवरों को मारकर उनके मांस या जंगलों में पाए जाने वाले कंद-मूल और जंगली फलों से अपनी भूख मिटाते थे। धीरे-धीरे उन्होंने जंगल में उगने वाली घासों के बीजों को भी खाना शुरू कर दिया। कालांतर में सभ्यता के विकास और जानकारी की बढ़ोतरी होने पर इन्हीं घासों के बीजों को मानव अनाज की तरह उपयोग करने लगा और आगे चल कर इन्हीं घासों के बीजों को खेतों में बोकर खेती से विधिवत अनाज प्राप्त करने लगा।

दुनिया भर के प्राचीन किसानों ने जंगली एवं स्वजात पादपों को पहले खेतों में उगाया फिर उनकी विशेष गुणों वाली जातियों में से अपनी मनचाही, उच्च पैदावार वाली, कीट-प्रतिरोधी, विभिन्न जलवायु में उगने योग्य तथा बीमारियों से प्रभावित न होने वाली किस्मों को चुन कर उनका कृषीकरण कर लिया। कुशल कृषकों ने हजारों प्रभेदों, किस्मों तथा अलग-अलग आनुवंशिकीय गुणों वाले जनन-द्रव्यों से युक्त पारंपरिक बीजों एवं किस्मों को संरक्षित किया जिन्हें आज **प्राचीन एवं स्वज्ञात किस्मों** के नाम से पुकारा जाता है।

विशेषज्ञों के मतानुसार कृषि-विकास की उपरोक्त प्रक्रिया दुनिया के इसी भाग और प्रक्षेत्र में संपन्न हुई। आज भी इन क्षेत्रों के कई किसान लगातार उन्हीं पारंपरिक देशी मूल के बीजों को ही खेती में उपयोग कर रहे हैं जो विरासत के रूप में उन्हें अपने पूर्वजों से मिले। यहां उगाई जा रही प्राचीन परंपरागत देशी कृषि फसलों में प्रमुख हैं– आलू, गेहूं, धान, मक्का, जौ, गन्ना, मूँग, मसूर, उड़द आदि। वनस्पति और कृषि वैज्ञानिकों ने ढेरों विभिन्नताओं, विशिष्टताओं से संपन्न इन्हीं पारंपरिक और देशी मूल के अनाजों और सब्जियों को अपनी कुशलताओं से संशोधित कर उन्नत बना कर विशेष क्षमताओं से युक्त कर दिया। लेकिन आज वैज्ञानिक वर्ग बड़ी गंभीरता से यह अनुभव कर रहा है कि मौलिक बीज ही हमारे आधारभूत साधन हैं, जिनके बिना हमारे लिए फसलों की विशेष क्षमता वाली नई किस्मों (जातियों) का निर्माण किसी भी दशा में आगे संभव नहीं है। इन परंपरागत देशी मूल के अनाजों और सब्जियों का जननद्रव्यों के बिना विकास सम्भव नहीं है। जननद्रव्य हमें परंपरागत मूल बीजों से ही मिल पाते हैं।

क्या हैं पादप जननद्रव्य ?

पादप जननद्रव्य जीवित ऊतकों से बने होते हैं। सब्जियों, अनाजों, पादपों की नवीन प्रजातियों के विकास के लिए यह एक अनिवार्य तत्व है। पादप जननद्रव्य के बिना उपयोगी मौलिक और परंपरागत जातियों का लाभ लेकर उनमें अपेक्षित परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ये पादप जननद्रव्य आनुवंशिकी सूचनाओं और पैतृक गुणों से परिपूर्ण होते हैं। इसी द्रव्य में बीज या पादप के किसी भाग से प्राप्त ऊतक (टिशू) – जैसे पेड़, पत्ती या परागकण का उपयोग करके एक संपूर्ण स्वस्थ पौधा तैयार कर लिया जाता है। यहां सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पादप जननद्रव्य ही वह आधारीय तत्व है जिससे पादप की नई जातियों का विकास

किया जाता है। इसकी प्राप्ति का मूल स्रोत हैं परंपरागत मौलिक बीज। हमें यहां यह भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि मौलिक परंपरागत बीजों में प्रकृति ने पर्यावरणीय जटिलताओं, रोगों और कीटों की मार सहने की क्षमता का निर्माण मौलिक गुणों के रूप में ही कर रखा है। ये गुण मौलिक बीजों में प्राकृतिक रूप से ही पाए जाते हैं, लेकिन खेती के दौरान अन्य फसलों और वनस्पतियों के प्रभाव और संक्रमण के चलते इनके मौलिक गुणों में गिरावट आ जाती है।

मौलिक बीजों पर मानवीय हमला: आज दुनिया के अनेक भागों में विकास के नाम पर मूल्यवान प्राकृतिक संपदाओं, वनस्पतियों, पादपों को जिस प्रकार उजाड़ कर बेदखल किया जा रहा है, उससे पादप विकास क्षमता से युक्त जननद्रव्यों के स्रोत और प्राकृतिक संसाधन भी नष्ट किए जा रहे हैं। दु:ख तो इस बात का है कि विनष्ट हो रही इस प्राकृतिक संपदा का अभी तक ढंग से आकलन भी नहीं हो सका है। आनुवंशिकीय संसाधनों के इस गति से हो रहे क्षरण और अपरदन ने विश्व के वनस्पति-विशेषज्ञों के लिए अत्यंत चिंता की स्थिति उत्पन्न कर दी है। हालात यदि यों ही रहे तो केवल 2050 तक वानस्पतिक मूलोच्छेदन से पादपों की दो लाख पचास हजार मौलिक जातियां विलुप्त होकर समाप्त हो जाएंगी।

अज्ञात वनस्पतियों का महत्व: अज्ञात मौलिक वनस्पतियों का मानव के लिए कितना महत्व है, इसे निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है: प्रख्यात आर्थिक वनस्पति-विशेषज्ञ एच.एस. जेंद्री ने अज्ञात वनस्पतियों के संरक्षण के सिलसिले में विश्व के चौबीस देशों के अपने परिभ्रमण के दौरान मध्य अमरीका से बड़ी मात्रा में जंगली, आदिम और प्राचीन छिम्मी, सेम, राजमा और फ्रेंचबीन जैसी फलियों वाली जातियों एवं उनसे निकटवर्ती मिलते-जुलते पादपों के नमूने संगृहीत किए। परीक्षण के दौरान वैज्ञानिक उस समय आश्चर्यचकित रह गए जब उन्हें यह पता चला कि इनमें से अठारह नमूने पादप आनुवंशिकी संसाधन के लिए बिल्कुल ही नए हैं। इसके साथ ही वैज्ञानिकों को सर्वाधिक खुशी इस बात से हुई, जब उन्हें पता चला कि इन मौलिक प्रजातियों में विभिन्न रोगों से लड़ने की विशेष क्षमता विद्यमान है। इन नमूनों में आज खेतों में उग रही व्यावसायिक फसलों में पाई जाने वाली शतुआ, चूर्णी, फफूंद, चितवर्णी, विषाणु और धूम्र-कुहरे की प्रतिरोधी क्षमताएं पाई गईं। यहां ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि उपरोक्त सभी फसली समस्याएं केवल पुनरुत्पादित व्यापारिक किस्मों में ही पाई जाती हैं।

बीन विवल के नाम से चर्चित सेम में लगने वाले घुन से क्षतिग्रस्त हो जाने वाली राजमा, फ्रेंचबीन और सेम के जननद्रव्य के अध्ययन के दौरान कोलंबिया स्थित अंतरराष्ट्रीय उष्ण कटिबंधीय कृषि केंद्र 'काली' में चितकबरे राजमा के जननद्रव्य में एक ऐसे जीन का पता लगा जो सेम में लगने वाले घुनों को फसलों को नुकसान पहुंचाने से रोक देता था और जिससे चितकबरी राजमा इन घुनों से सुरक्षित रहती थी। वैज्ञानिकों की इस खोज से सेम प्रजाति की फसलों में घुन से बचाव का ऐसा रसायनरहित विकल्प प्राप्त हुआ, जिससे पर्यावरण को हानि पहुंचाए बिना मैक्सिको के किसानों को लाखों डालर की बचत हुई।

विशेष क्षमता वाली फसलों का निर्माण: हरित क्रांति के मूल में गेहूं की कुछ स्वजात किस्मों से प्राप्त जीनों को पादपप्रजनन वैज्ञानिकों ने संपूर्ण विश्व में उगाया और विश्व के अनाज गोदामों को इतना भर दिया कि भारत जैसा देश जो हरित क्रांति के पूर्व आज की आधी आबादी के लिए भी अनाज नहीं पैदा कर पाता था, आज 112 करोड़ आबादी को भोजन देने के बाद विदेशों को भी अनाज बेच रहा है। 1977 में मक्के की जंगली किस्मों से प्राप्त जीनों से विकसित जातियां विषाणु प्रतिरक्षा के लिए संपूर्ण विश्व में चर्चित हुईं और नई बनी प्रजाति से अनुपयुक्त भूमि में भी मक्के की व्यावसायिक खेती होने लगी। इस प्रविधि से विकसित मक्के की नई जाति मजबूत तने और जड़ों वाली बनी। इसी प्रकार चावल के क्षेत्र में 1966 में फिलीपीन्स में हरित क्रांति का श्रीगणेश हुआ जिसमें देशज धान के जीनों के संकरण से उच्च पैदावार वाले धानों की प्रजातियों के बीज मिले।

पारंपरिक बीजों की उपेक्षा से नुकसान : आज सारी दुनिया में विकास के नाम पर जंगलों का जिस रूप में विनाश किया जा रहा है, बड़े-बड़े बांध और लंबी-चौड़ी सड़कें, कल-कारखाने और कॉलोनियां बनाई जा रही हैं, विकास के इन अदूरदर्शी क्रिया-कलापों से संपूर्ण विश्व में जंगलों में उगने वाली मौलिक देशज जातियों के साथ ही प्राचीन जातियों से निकट संबंध रखने वाली गेहूं, धान, मक्का, जौ, बाजरा, उड़द, मसूर, मूंग की अनेक जातियों को हम प्रति वर्ष खोते जा रहे हैं।

यहां सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नई विकसित उच्च गुणों वाली विशिष्ट संकर जातियों का एक निश्चित जीवन काल होता है। एक निश्चित अवधि के बाद ये अपने गुणों को क्रमश: खोने लगती हैं, जिससे पूर्व में गढ़ी गई जातियों के पुनर्निर्माण के लिए हमें फिर से मौलिक, परंपरागत देशज बीजों की शरण में जाना पड़ता है। लेकिन जंगलों के विनाश और संकरण के कारण हम मौलिक बीजों को लगातार खोते जा रहे हैं। ध्यान रहे कि संकरित जातियों में लगने वाले कीटों, रोगों और फफूंदों ने दुनिया के अग्रगण्य कृषक देशों में कई बार तबाही मचाई है। वर्ष 1970 में अमरीकी कृषक समुदाय मक्के की फसल पर लगने वाली 'कॉर्नलीफ ब्लाइट' के चलते कराह उठा था। इसी प्रकार कुछ दशक पूर्व एक फफूंद रोग ने श्रीलंका के चावल की खेती को चौपट कर दिया और 1989 में फ्लोरिडा में नींबू के बागानों को जीवाणु-जन्य रोग ने अपनी चपेट में ले लिया था।

आज के बदलते वैश्विक परिवेश में परंपरागत देशज बीजों का महत्व

कृषि के क्षेत्र में नित हो रहे नए शोध-कार्यों के लिए मौलिक देशी बीजों की हमें हमेशा जरूरत रहेगी। बिना मौलिक बीजों के नई जातियों का निर्माण कठिन है। आज जब हरित क्रांति अपनी चरम सीमा पर पहुंच कर स्थिर हो चुकी है, तब मौलिक बीज ही ऐसा एकमात्र साधन हैं, जिनसे नई गुणवत्ता वाली जातियों का निर्माण कर तथा विशेष गुणों से युक्त अनाजों तथा सब्जियों का उत्पादन बढ़ाकर विश्व की बेतहाशा बढ़ती हुई आबादी के लिए भविष्य में भोजन और पोषक तत्व जुटाया जा सकेगा। दूसरी ओर समापक (टर्मिनेटर)और पराजीनी बीजों ने हमारे किसानों और कृषि-वैज्ञानिकों को नई चुनौती दी है। ऐसे में पारंपरिक, देशज और मौलिक बीजों का महत्व और भी बढ़ गया है।

भारतीय उपमहाद्वीप जैविक संपदाओं से अति संपन्न है। यह अपनी उर्वर भूमि और जैविक विभिन्नताओं के लिए प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र के अनेक भागों में कृषि-कार्य हजारों वर्षों से होता आ रहा है। खेती, बागवानी और उद्यान-कृषि यहां का पारंपरिक पेशा है। आज भी यहां के लोग परंपरा से प्रयोग में आ रही सावां, कांदो, मडुआ, रामदाना, तिन्नी, मूँग, जौ, चना, ज्वार, बाजरा, मसूर जैसी फसलों के लिए पारंपरिक बीजों का ही प्रयोग करते हैं। आज इस बात की जरूरत महसूस होने लगी है कि इस क्षेत्र में हजारों साल से बीजों के रूप में प्रयोग में आने वाली देशज जातियों को बचाए रखा जाए जिससे इस क्षेत्र में परंपरा से प्रयुक्त हो रही जातियों का उपयोग उनकी प्राचीन किस्म और प्रभेद को आगे आने वाली तथा ज्यादा उपज देने वाली नई उपयोगी जातियों के विकास के लिए किया जा सके और अपनी इन प्राचीन देशज जातियों के जननद्रव्यों के माध्यम से शक्तिशाली और ओजवान जाति बनाकर हम प्राचीन पारंपरिक धरोहरों को आगे भी उपयोग में लाते रहें।

आज के परिवेश में यह बात और जरूरी हो जाती है, क्योंकि अब अपनी वैज्ञानिक क्षमताओं और आर्थिक संपन्नता के चलते विकसित देश हमारी इन्हीं प्राचीन मौलिक देशज जातियों को थोड़ा फेर-बदल कर पेटेन्ट करा कर अपनी संपत्ति बताने में लग गए हैं। बासमती चावल, हल्दी, करेला, तुलसी, अर्जुन आदि हमारी पारंपरिक जैविक संपदाओं का विदेशी पेटेन्ट कुछ इसी तरह का कार्य है। वास्तव में विदेशी वैज्ञानिक हमारी मौलिक देशज जातियों को संगृहीत कर ले जाने के बाद ही इस तरह के कार्यों में सफल हो सके हैं। यदि हमने अपनी मौलिक देशज जातियों के महत्व को समझ-बूझ कर तथा अपनी नीतियों का निर्धारण कर शोध किया होता तो यह स्थिति नहीं आ पाती।

लुप्त होती पारंपरिक देशज जातियां: कृषि के क्षेत्र

में विकास के नाम पर नई और अधिक उत्पादन देने वाली फसलों की बाढ़ के चलते हम लगातार अपनी मौलिक देशज जातियों को खोते चले जा रहे हैं। हजारों सालों से प्रयोग में आने वाली मक्के, चावल, गेहूं की मौलिक प्रजातियों की उपलब्धता में भारी गिरावट आई है। आज हमारी अपनी पारंपरिक और वन्य वनस्पतियों और उनसे निकट संबध रखने वाले पादपों के बीजों का अपने मौलिक स्थानों से लगातार विस्थापन जारी है। उनकी जगह संकर बीजों की उपस्थिति में बेतहाशा बढ़ोतरी हो रही है। चावल के प्रमुख उत्पादक हमारे पड़ोसी देश श्रीलंका में सन् 1959 में चावल की 2,000 देशज जातियां उपलब्ध थीं, लेकिन आज वहां केवल 100 जातियां ही उपलब्ध हैं। इसी प्रकार हमारे देश में लगभग 30,000 धान की प्रजातियों में से मात्र 10 प्रतिशत किस्में ही शेष रह गई हैं।

बीज निर्माण के क्षेत्र में लगी हुई अति साधन-संपन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने दुनिया भर की प्राचीन, देशज, परंपरागत मौलिक जातियों का वर्गीकरण करके उन्हें विधिवत जीन बैंक बनाकर संग्रहीत करने का कार्य दशकों पहले से आरंभ कर रखा है, ये कंपनियां देशज मौलिक बीजों में ही नवीकरण करने में लगी हैं। दूसरी ओर एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के गरीब देशों का किसान अपने ही मौलिक बीजों के माध्यम से तैयार नई जातियों को भारी कीमत देकर खरीदने के लिए बाध्य है। क्षेत्र-विशेष में पाए जाने वाले मौलिक बीजों की तलाश में हमें कभी न कभी उसके मौलिक क्षेत्र की शरण में जाना ही होगा। लेकिन यदि हम उनके क्षेत्रों से उन्हें समाप्त कर चुके होंगे तो उनकी प्राप्ति असंभव हो जाएगी। हमारा यह कार्य आने वाली पीढ़ियों को उनके हक से वंचित करने जैसा होगा। अत: आवश्यकता इस बात की है कि क्षेत्र-विशेष की देशज फसलों की थोड़ी मात्रा में खेती अवश्य की जाए जिससे मौलिक परंपरागत देशी बीजों को समाप्त होने से बचाकर उनकी विशेषता और विविधता को कायम रखा जा सके अन्यथा आने वाले दिनों में दुनिया के अविकसित या विकासशील कृषिप्रधान देशों के किसान अपनी मौलिक संपदाओं से पूरी तरह बेदखल होकर दयनीय स्थिति में पहुंच जाएंगे।

ooo

7

मानव जीनोम परियोजना और भारत

• शिव प्रताप सिंह
• धर्मेन्द्र पाल सिंह
• डॉ. शिवपाल सिंह

प्रस्तावना : किसी प्राणी के संपूर्ण आनुवंशिक पदार्थ को जीनोम कहते हैं। मनुष्य का जीनोम 23 जोड़ा गुणसूत्रों से बना होता है। गुणसूत्र प्रत्येक कोशिका के मध्य स्थित केंद्रक में पाए जाते हैं। द्विगुणसूत्री कोशिका में यह संख्या 46 होती है जबकि अगुणित कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या 23 होती है।

गुणसूत्र न्यूक्लीक अम्ल से बनी धागेनुमा रचनाएं होती हैं। हम जानते हैं कि न्यूक्लीक अम्ल शर्करा फॉस्फेट तथा 4 प्रकार के क्षारकों से बनता है। ये चार क्षारक एडिनीन, थाइमीन, साइटोसीन और गुआनीन हैं। एडिनीन हमेशा थाइमीन के साथ युग्मक बनाता है तथा साइरोसीन हमेशा गुआनीन के साथ। इन क्षारक युग्मों के कारण ही डी.एन.ए. की दो कड़ियाँ आपस में जुड़ी रहती हैं। अमीनो अम्ल तथा प्रोटीन में 3-3 क्षारक युग्म की शृंखलाएं होती हैं।

मानव जीनोम परियोजना : 1977 में वाल्टर गिल्वर्ट, मैक्सम सैंगर और उनके साथियों द्वारा एक तकनीक विकसित की गई जिसके द्वारा डी.एन.ए. के खंडों को अलग करना संभव हुआ है।

मानव जीनोम परियोजना की शुरुआत 1990 में अमरीका के ऊर्जा विभाग एवं राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान द्वारा की गई थी। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इससे आणविक चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति होगी। ऐसे जीनों को पहचाना जाएगा जिनके कारण रोग उत्पन्न होते हैं या उन जीनों को पहचानना संभव होगा जो वृद्धावस्था के लिए जिम्मेदार हैं। इससे मानव विज्ञान का अध्ययन करने में सहायता मिलेगी तथा कृषि एवं जैव प्रौद्योगिकी का भी विकास होगा।

मानव जीनोम में 98 प्रतिशत भाग अकोडित डी.एन.ए. होता है जिसे जंक डी.एन.ए. भी कहते हैं। मात्र 2 प्रतिशत भाग को जीन की संज्ञा दी गई है। हम जानते हैं कि मानव जीनोम में 3.1 अरब रासायनिक क्षारक होते हैं तथा जीनों की संख्या तीस से पैंतीस हजार के मध्य होती है। नवीन शोध के अनुसार यह संख्या अधिक भी हो सकती है।

मानव जीनोम परियोजना में अमरीका तथा विश्व के अन्य पांच राष्ट्रों (ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, चीन)तथा इनकी 20 प्रयोगशालाओं ने भाग लिया। यह परियोजना 2005 तक पूरी होनी थी परंतु समय से पहले ही पूरी कर ली गई।

मानव जीनोम परियोजना और भारत : हरित क्रांति और औद्योगिक क्रांति के संपर्क में भारत काफी समय बाद आया। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमने प्रगति की है लेकिन न जाने क्यों भारत चिकित्सा विज्ञान के लिए क्रांतिकारी इतनी बड़ी परियोजना से कटा रहा।

जीनों की पहचान, जैव विकास, कृषि, जैव प्रौद्योगिकी, रोगविज्ञान, उपचार आदि की दृष्टि से मानव जीनोम परियोजना के आंकड़े उतने ही महत्वपूर्ण होंगे जितने भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में गैलीलियो, न्यूटन, आइन्स्टाइन आदि के सिद्धांत हुए।

जिन राष्ट्रों ने मानव जीनोम परियोजना में भाग लिया यदि वे परिणामों का पेटेंट करा लें तो शेष राष्ट्र परिणामों के विकास की दौड़ में दशकों पीछे रह जाएंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। ऐसे समय में भारत को चाहिए कि वह सरकारी एवं निजी क्षेत्र की बहुराष्ट्रीय दावा कंपनियों, राष्ट्रीय विज्ञान प्रयोगशालाओं एवं उन राष्ट्रों को भी जो इस प्रकार की परियोजना में रुचि रखते हों, जोड़कर एक बृहत् परियोजना बनाए।

भारत में इस समय हैदराबाद स्थित सेंटर फॉर सेल्यूलर एण्ड मॉलीक्यूलर बॉयोलोजी का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है।

ooo

8

कार्बन

• डॉ. ए.के. चतुर्वेदी

कार्बन शब्द लैटिन भाषा के शब्द कारबो (Carbo) से बना है, जिसका तात्पर्य चारकोल होता है। कार्बन की परमाणु संख्या 6 है तथा इसका परमाणु भार 12 है। कार्बन परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की कक्षीय व्यवस्था 2, 4 की होती है। सूक्ष्म संरचना के आधार पर इसे $1S^2$, $2S^1$, $2Px^{+1}$, $2Py^1$ के रूप में दर्शाया जाता है अत: इसकी संयोजकता 2 है जिससे एक ही पदार्थ कार्बन मोनो आक्साइड बनता है। परंतु कार्बन की संयोजकता 4 होती है। अत: उत्तेजित अवस्था में इलेक्ट्रोन की उपस्थिति इस प्रकार है: $1S^2$, $2S^2$, $2Px^1$, $2Py^1$, $2Pz^1$। इसीलिए कार्बन को आवर्त सारणी में चौथे समूह में रखा गया है।

कार्बन पृथ्वी पर सर्वव्यापी है। उपलब्धता की दृष्टि से इसका स्थान हाइड्रोजन, हीलियम और ऑक्सीजन के बाद आता है। कार्बन का गलनांक 3550^0 सेल. है। ईसा पूर्व 3750 में मिस्र के वैज्ञानिकों ने कार्बन के विषय में जानकारी दी। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि इस काल में कार्बन प्राप्त था अर्थात उन्हें कार्बन के विषय में अच्छा ज्ञान था।

कार्बन के अपने विशेष गुण हैं। आवर्त सारणी में तत्व तीन वर्गों में विभाजित किए गए हैं: (1) वे इलेक्ट्रो-पॉजिटिव तत्व जिनकी इलेक्ट्रॉन के प्रति ससंजन या लगाव या तो कम होता है या नहीं होता। इसीलिए वे इलेक्ट्रॉन को सरलता से त्याग देते हैं। पहले से चौथे समूह तक के तत्व इस श्रेणी में आते हैं। यह गुण पहले से चौथे समूह तक कम हो जाता है। परंतु एक ही समूह में परमाणु क्रमांक बढ़ने पर यह घटता है। (2) वे इलेक्ट्रोनेगेटिव तत्व जिनका इलेक्ट्रॉन के प्रति लगाव अधिक होता है, इलेक्ट्रॉन को सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। जैसे-जैसे इलेक्ट्रॉन ग्रहण करने की संख्या कम होगी, इलेक्ट्रो-नेगेटिव गुण अधिक होगा। पाँचवें समूह से आठवें समूह तक के तत्व इस श्रेणी में आते हैं। पाँचवें समूह से यह गुण बढ़ता है तथा सातवें समूह में यह अधिकतम होता है। तीसरे वर्ग में उदासीन तत्व आते हैं। इसमें जीरो समूह के तत्व आते हैं। कार्बन चौथे समूह में है। अत: इलेक्ट्रोपॉजीटिव है। परंतु कार्बन ही ऐसा तत्व है जो इलेक्ट्रोपॉजीटिव Cd_4 तथा इलेक्ट्रोनगेटिव CH_4 की तरह व्यवहार करता है।

कार्बन आपस में और अन्य तत्वों से मिलकर एक करोड़ पदार्थ बनाता है। कार्बन कार्बनिक रसायन का आधार है। कार्बन हाइड्रोजन से मिलकर सरल पदार्थ हाइड्रोकार्बन मेथेन (CH_4) बनाता है। हाइड्रोकार्बन एक श्रेणी या शृंखला बनाते हैं जिसे समजातीय श्रेणी (होमोलोगस सीरीज) कहते हैं। प्रत्येक हामोलोगस अपने ऊपर व नीचे वाले से (CH_2) का अंतर रखता है।

कार्बन हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन से मिलकर मुख्य जैविक पदार्थ जैसे एल्कोहल, सुगर, सेल्युलोज, वसा, लिगनिन, ऐरोमेटिक एस्टर बनाता है। कार्बन हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन के साथ मिलकर एमीनो अम्ल और प्रोटीन बनाता है। कार्बन हाइड्रोजन ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व सल्फर के साथ मिलकर ऐन्टिबायोटिक पदार्थ बनाता है। कार्बन नाइट्रोजन से मिलकर ऐलकोलोयड बनाता है, जिनकी विशेष उपयोगिता है।

कार्बन परमाणु आपस मे जुड़कर लंबी शृंखला बनाते हैं। कार्बन के आपस में जुड़ने की क्रिया को शृंखला (कैटीनेशन) कहते हैं। कार्बन अन्य तत्वों से जुड़कर कारबाइड बनाता है, जो बहुत उपयोगी हैं। कार्बन हाइड्रोजन से मिलकर हाइड्रोकार्बन बनाता है जिसका आज ईंधन के रूप में उपयोग किया जा रहा है। अत: यह बहुत ही मूल्यवान हो गया है। प्राकृतिक गैस तथा पेट्रोलियम पदार्थ इस श्रेणी में आते हैं। आज ये विश्व की अर्थव्यवस्था की रीढ़ बन चुके हैं।

कार्बन ऐमोरफस होता है। ग्लास जैसा कार्बन या विटरीयस (Vitreous) कार्बन 1960 में इंगलैंड में बनाया गया। प्राय: कार्बन काला होता है। परंतु 1996 में सफेद कार्बन का आविष्कार हुआ। ग्रेफाइट को कम दबाव और उच्च ताप (2500^0k) पर गर्म करने पर सफेद कार्बन प्राप्त होता है। कार्बन के अन्य समरूप भी हैं, जिनमें परमाणु भार का अंतर होता है। C^{14} एक समरूप (आइसोटोप) है। इसका उपयोग ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक वस्तुओं की उम्र ज्ञात करने में किया जाता है।

कार्बन भिन्न तरीके से जुड़ कर भिन्न मॉलिक्युलर कॉन्फिग्यूरेशन वाला पदार्थ एलोट्रोप्स बनाता है, जिसके गुण भिन्न होते हैं। इसका एक रूप बहुत ही कठोर होता है। यह हीरा कहलाता है। तराश कर इसमें चमक लाई जाती है। दूसरा रूप बहुत ही मुलायम होता है। यह ग्रेफाइट है। इसका उपयोग पेन्सिल में किया जाता है। कार्बन का तीसरा रूप कोयला है जो कठोर और मुलायम होता है। यह ऊर्जा प्राप्त करने का आधार है। कार्बन का चौथा रूप फुलरीव या बकीबॉल है। इसे 1985 में रिचर्ड बकमिनिस्टर- फुलर ने बनाया। यह फुटबॉल के आकार की होती है। इसी क्रम में पाँचवा रूप ग्रीफीन है, जो टू डाईमेन्शन कार्बन अणु की शीट होती है। कार्बन षट्कोणीय स्थिति में जुड़े रहते हैं। अब तो नैनो ट्यूब का भी आविष्कार हो चुका है। 2005 में एग्रीगेटेड डाइमन्ड नैनो रॉड भी बनाई जा चुकी है। ऐसा विश्वास है कि यह कम सिकुड़ने वाला पदार्थ है। कार्बन नैनो फोम भी 1999 में एन्ड्री वी रोड द्वारा आविष्कृत किया जा चुका है।

कार्बन पदार्थों के गुणों में भिन्नता होती है। सभी सायनाइड विषैले होते हैं। कार्बन मोनोऑक्साइड विषैली गैस है। ग्लुकोज़ ऊर्जा का स्रोत है। ग्लाईकोजन और स्टार्च ऊर्जा के संचित स्रोत हैं। हीरा विद्युत का कुचालक है। जबकि ग्रेफाइट विद्युत् का सुचालक है। एमोरफस कार्बन समदैशिक (आइसोट्रोपिक) है। जबकि कार्बन नैनो ट्यूब विषम दैशिक (एनीसोट्रोपिक) है।

कार्बन का उपयोग उद्योगों में अधिक होता है। मुख्य रूप से कार्बन का उपयोग इस्पात बनाने में किया जाता है। हाइड्रोकार्बन उद्योगों की आवश्यकता है। जिन पॉलिमरों में कार्बन होता है, वे प्लास्टिक का आधार होते हैं। रबड़ और प्लास्टिक उद्योग में कार्बन कज्जल (ब्लैक) का उपयोग किया जाता है। कार्बन पदार्थ विलायक, स्नेहक और वर्णक के रूप में उपयोग मे लाए जा रहे हैं। कार्बन फाइबर कंपोजिट पदार्थ है। इसका उपयोग साइकिल और हेलमेट बनाने में किया जाता है। सक्रिय चारकोल का दवाई के रूप में उपयोग किया जाता है। परमाणु/भट्ठी में न्यूट्रॉन विमंदक (माडरेटर) का कार्य कार्बन करता है।

विभिन्न माध्यमों में जैसे वातावरण, समुद्र और पृथ्वी पर पदार्थों में कार्बन की उपस्थिति तथा एक दूसरे में परिवर्तन को वैश्विक कार्बन चक्र कहते हैं। यह भंडारण पूल है। कार्बन का एक भंडार से दूसरे भंडार में परिवर्तन होता है। जिस पूल में कार्बन आता है, उस पूल को कार्बन सिंक कहते हैं। जिस पूल से कार्बन जाता है उसे कार्बन स्रोत कहते हैं। विविक्सीभवन (सिक्वेस्ट्रेशन) वह प्रक्रिया है जिसमें वातावरण से कार्बन को हटाया जाता है। कार्बन चक्र को दो भागों में विभाजित करते हैं: (1) भूगर्भीय घटक (2) जैविक घटक।

भूगर्भीय कार्बन चक्र — पृथ्वी की सतह पर बने कार्बोनेट नदी के जल द्वारा समुद्र के जल में घुल जाते हैं और समुद्र तल में बैठ जाते हैं जिससे समुद्र का तल फैलता है। अध:सरण (सबडक्शन) प्रक्रिया के अंतर्गत समुद्रतल महाद्वीपीय मार्जिन के नीचे आ जाता है। विवर्तनिक दबावों के कारण समुद्र तल का कार्बन और भी नीचे गहराई में चला जाता है। यह गर्म होता है और समुद्र की सतह तक आ जाता है। यह वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड को उत्सर्जित करता है। ज्वालामुखी के फटने से कार्बन और कार्बन डाईऑक्साइड गैसें वातावरण में आ जाती हैं।

जैविक कार्बन चक्र — प्रकाश संश्लेषण और श्वसन की क्रियाएं पृथ्वी, जल और वायु में कार्बन की गति को नियंत्रित करती हैं। प्रकाश संश्लेषण में हरे पौधों में कार्बन डाईऑक्साइड और जल सूर्य की उपस्थिति में शर्करा का निर्माण होता है, जो बायोमास बनाने के उपयोग में आती है। जब पौधे जानवरों के द्वारा खा लिए जाते हैं या विखंडित होते हैं या जलते हैं तो संचित ऊर्जा और कार्बन का उत्सर्जन वातावरण में होता है। तब एक चक्र शुरू हो जाता है। वातावरण में कार्बन सीधे रूप मे नहीं आता। जब किसी कारण जंगल पृथ्वी के नीचे दब जाते हैं तब वे कार्बन को जमीन के नीचे पाशित (ट्रैप) कर लेते हैं। बहुत वर्षों बाद बायोमास जीवाश्मी ईंधन में परिवर्तित हो जाते हैं। जीवाश्मी ईंधन भू-पर्पटी के नीचे जमा होते रहते हैं। जलने पर वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ने लगती है।

औद्योगिक क्रांति ने जीवाश्मी ईंधन का उपयोग बढ़ाया है। इससे वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बहुत बढ़ गई है जिससे ग्रीन हाउस प्रभाव तथा भूमंडलीय तापन प्रदर्शित हो रहे हैं। सौर ऊर्जा बाधित नहीं होती है। परंतु जब ऊर्जा वाष्पित होती है तब वातावरण में उपस्थित कार्बन डाईऑक्साइड बाधा उत्पन्न करती है जिससे तापमान बढ़ता है। इसके दुष्परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हिमनद पिघल रहे हैं। नदियों व समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है। बाढ़, सूखा आम बात हो गई है। जलवायु में परिवर्तन हो रहा है। वर्षा और सर्दी समय पर नहीं पड़ रही है। फसल की मात्रा कम हो रही है। नए-नए रोग उत्पन्न हो रहे हैं। तापमान बढ़ने से संक्रामक रोगों की संख्या बढ़ रही है।

वाहनों की बढ़ती संख्या के कारण जीवाश्मी ईंधन का उपयोग बढ़ गया है जिससे वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। आज विश्व के सभी राष्ट्रों ने प्रयास कर क्योटो प्रोटोकॉल बनाया है। इसके प्रयास से श्रेणीबद्ध तरीके से 5 वर्षों में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा कम करनी है। इसके लिए सभी प्रयासरत हैं। इसी प्रकार हम विश्व को बचा पाएंगे।

वायुमंडल में कार्बन स्वांगीकरण से जलवायु प्रभावित होती है, जिससे फसलों का उत्पादन प्रभावित होता है। जंगलों का क्षेत्र कम होने से कागज, ईंधन, फाइबर और लकड़ी के उत्पादन, मात्रा तथा गुणवता में कमी आई है। जंगलों की कमी से पानी और पोषकों की भी कमी हुई है। परिणामत: उत्पादन प्रभावित हुआ है।

ओजोन की उपस्थिति में पृथ्वी के पारितंत्र की कार्बन ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है अत: जीवाश्मी ईंधन में कार्बन उत्सर्जन की मात्रा कम हो जाती है। यह हानिप्रद है। ओजोन की उपस्थिति में कार्बन डाईऑक्साइड का अवशोषण कम हो जाता है। इससे उत्पादन प्रभावित होता है।

एक ओर कार्बन आवश्यक है परंतु दूसरी ओर कार्बन डाईऑक्साइड की बढ़ी हुई मात्रा हानिप्रद है। इसके दुष्यप्रभावों से सभी राष्ट्र ग्रसित हो रहे हैं। अत: अब राष्ट्र आपस में मिल कर प्रयास कर रहे हैं कि कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम हो। सभी देशों ने मिलकर क्योटो प्रोटोकॉल बनाया। अब ये उसका पालन करने के लिए प्रयासरत हैं। पहले तो विकसित राष्ट्रों ने साथ नहीं दिया परंतु जब वे दुष्परिणामों का शिकार होने लगे तो स्वयं मजबूरन साथ दे रहे हैं। अमरीका के जंगलों में आग लगना ग्लोबल वार्मिंग का परिणाम है। समुद्री तूफानों का बार-बार आना या चक्रवातों द्वारा हानि पहुंचना आम बात हो गई है।

कार्बन रंजन उद्योग तथा दवा उद्योग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जीवन रक्षक दवाओं के निर्माण में यह सहयोग कर रहा है। जीवन के लिए आवश्यक पदार्थों- कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा व विटामिन कार्बन की सहायता से ही बनाए जाते हैं पर ध्यान रहे कि इनकी अधिकता हानिप्रद होती है। अत: समुचित मात्रा में ही इनका उपयोग करना चाहिए।

9

फलों के पेय : कितने स्वास्थ्य वर्धक

• डा. जे.एल. अग्रवाल

ताजा फलों का रस पीने का चलन ज़माने से है। संपन्न वर्ग तो इनका सेवन नियमित रूप से करता ही रहा है लेकिन मध्यम और निम्न वर्ग में फलों के रस को विशेष स्थिति में प्रयोग में लाया जाता है। विशेषकर यह बीमार, कमजोर तथा मरीजों को दिया जाता है। पश्चिमी देशों में फलों के रस एवं पेयों का सेवन बहुतायत से किया जाता है। अब हमारे देश में भी फलों के पेय बहुतायत से उपलब्ध हैं और इनके पीने का चलन बढ़ रहा है।

मान्यता है कि फलों के रस शक्तिवर्धक होते हैं, पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, ताजगी प्रदान करते हैं तथा थकावट दूर करते हैं। वयस्क, युवा, बच्चे सभी आसानी से उपलब्ध होने, स्वादिष्ट होने, पीने में आसानी के कारण और विज्ञापन के बहकावे में आकर इनका सेवन बहुतायत से करने लगे हैं। ठंडे पेयों- पेप्सी, कोक इत्यादि में कीटनाशक रसायनों की मिलावट की खबरों के कारण जागरूक व्यक्ति इनका सेवन छोड़ कर फलों के पेयों का सेवन करने लगे हैं। ठंडे पेयों का निर्माण करने वाली सभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भी रुझान देख कर फलों के पेय बनाने शुरू कर दिए हैं। देश में फलों के पेयों के सेवन का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। इस समय देश में 1,200 करोड़ रुपए से ज्यादा के फल-पेयों की बिक्री होती है और यह तेजी से बढ़ रही है। देश में डाबर (कूलर्स, रीमल, पेन्सी) (ट्रॉपिकाना, ट्रॉपिंस, स्लाइस), कोक (माजा), मदर डेरी (सफल), गोदरेज (एम्स) इत्यादि फल-पेय उपलब्ध हैं।

फल-पेयों के विभिन्न स्वरूप

फल-पेय (फ्रूट ड्रिंक्स) विभिन्न फलों, जैसे संतरा, मौसमी, लीची, आम, अंगूर, अमरूद इत्यादि के हो सकते हैं। इनकी गुणता बनाने के ढंग भिन्न होते हैं। इसकी जानकारी आवश्यक है।

फलों का रस या कन्सन्ट्रेट : इनमें फलों के रस के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलाया जाता है, न प्रतिरक्षक रसायन, न ही चीनी, सैक्रीन या अन्य तत्व।

फल-पेय (फ्रूट ड्रिंक्स)- यह पेय है जिसमें फलों के रस का कुछ अंश (20 प्रतिशत तक) हो सकता है, या फलों की खुशबू होती है।

नेक्टर (Nectar): इनमें फल के रस की मात्रा 20-99 प्रतिशत तक हो सकती है। इनमें चीनी, सैक्रीन, प्रतिरक्षक रसायन इत्यादि तत्व मिले हो सकते हैं।

कुछ फल पेयों में विटामिन सी, कैल्शियम इत्यादि पोषक तत्व भी इनको पौष्टिक बनाने के लिए मिलाए जाते हैं।

फल-पेय बनाम फलों की पौष्टिकता : फलों के रस में जल, सरल शर्करा, सुक्रोज, फ्रक्टोज, ग्लूकोज, सार्बीटाल, विटामिन सी, ए, खनिज, लवण, कैल्शियम, पोटैशियम, सोडियम इत्यादि मौजूद होते हैं। रस में पोटेशियम प्रचुर मात्रा में होते हैं। अत: उच्च रक्तचाप के मरीज इनका सेवन कर सकते हैं।

फल पेयों (फ्रूट ड्रिंक्स) में इनकी मात्रा में बदलाव आ जाता है जो इनमें मौजूद फलों के अंश और इनमें मिलाए गए अन्य तत्वों के अनुसार होता है। सामान्यत: इनमें सरल शर्कराओं की मात्रा बढ़ जाती है जबकि विभिन्न विटामिन, खनिज लवणों की मात्रा कम हो सकती है।

फलों में इन पौष्टिक तत्वों के अतिरिक्त फाइबर, फाइटो केमिकल भी मौजूद होते हैं। फाइबर सेवन से कब्ज, गैस बनने की समस्या हृदय, रोग मधुमेह, कैंसर, उच्च रक्त चाप, आंतों के कैंसर की संभावना कम होती है। फाइटो केमिकल शरीर को विभिन्न रोगों से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

फ्रूट ड्रिंक्स में कैलोरी, विटामिन एवं खनिज लवण प्रचुर मात्रा में हो सकते हैं, परंतु असल में यह ठंडे पेयों के सदृश ही होते हैं, जिनमें अनेक पोषक तत्वों की कमी होती है। फल-पेयों के सेवन से निखालिश कैलोरी की आपूर्ति होने से मोटापा हो सकता है, शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।

कितने फल सेवन करें: संतुलित एवं स्वास्थ्यवर्धक भोजन का सेवन करने के लिए रोजाना फलों का सेवन करना आवश्यक है। आयु, सक्रियता के अनुसार दो से चार ताजे फलों का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। बेहतर होगा फलों का सेवन करें, रस का नहीं पर यदि पसंद हो तो कम से कम आधी मात्रा में फलों का सेवन अवश्य करें, शेष को फलों के रस के रूप में लिया जा सकता है। फल-पेय (फ्रूट ड्रिंक्स) पेय सदृश होते हैं अत: यथासंभव उनका सेवन न करें। 6 माह तक के शिशुओं को फल-पेय न दें।

फल-पेयों के दुष्प्रभाव : बच्चे, युवा, वयस्क सभी फल-पेयों के दीवाने हो रहे हैं, क्योंकि यह स्वादिष्ट होते हैं, सुविधाजनक होते हैं, बने-बनाए आकर्षक पैकिंग में मिलते हैं, निर्माता इनका जोर-शोर से प्रचार करते हैं।

यदि बच्चे दूध के स्थान पर फलों के रस या फल-पेयों का सेवन करते हैं तो इनके शरीर में कैल्शियम की कमी हो सकती है। दूध और दुग्ध पदार्थों में अधिक मात्रा में और बेहतर गुणता का कैल्शियम होता है। कैल्शियम दाँतों व हड्डियों को मजबूत बनाने के लिए आवश्यक होता है। फल-पेयों में अत्यधिक शर्करा होने के कारण दाँत कमजोर हो सकते हैं, सड़ सकते हैं।

कुछ बच्चों तथा वयस्कों में फल-पेयों का सेवन करने के बाद दस्त या पेट में गैस बनने की समस्या हो सकती है, क्योंकि रस में मौजूद सॉर्बिटल का आँतों से अवशोषण नहीं हो पाता।

कुछ शोधों से सिद्ध हुआ है कि अत्यधिक मात्रा में फल-पेय सेवन करने वाले बच्चे नाटे और मोटे हो सकते हैं अथवा कुपोषण-ग्रस्त हो सकते हैं। उनके मधुमेह-ग्रस्त होने की संभावना भी बढ़ जाती है।

यदि फल के रस पेय को निस्संक्रमित नहीं किया गया तो संक्रमण रोग हो सकते हैं। यदि निर्माण गुणता का ध्यान नहीं रखा गया तो फल-पेय में कीटनाशक रसायन भी उपस्थित हो सकते हैं। यदि फल-पेयों में प्रतिरक्षक रसायन मिलाए गए हैं तो इनके दुष्प्रभाव भी हो सकते हैं।

उचित मात्रा में फलों के रस का सेवन : फलों के रस का सेवन यदि सही मात्रा में किया जाता है तो यह नुकसानदायक नहीं होता। यह संतुलित भोजन का आवश्यक अंग होता है। फलों के रस का सेवन करने से इनमें मौजूद विटामिन सी, फ्लेवोनॉयड के प्रभाव के कारण कैंसर, हृदय रोग आदि का खतरा कम हो जाता है। यदि फलों के रस का नियमित सेवन किया जाता है तो इनकी कमी की संभावना नहीं रहती।

फलों के रस में विद्यमान विटामिन सी के कारण आँतों से आयरन का अवशोषण बेहतर ढंग से होता है, अत: अरक्तता (अनीमिया) होने की संभावना भी कम हो जाती है। रसों के सेवन से ताजगी आती है, स्फूर्ति आती है और थकान मिटती है।

फल-रस पेयों के सेवन के लिए निर्देश

बच्चों, युवा, वयस्कों सभी के लिए फलों के रस के स्थान पर फलों का सेवन अधिक स्वास्थ्यवर्धक होता है।

- यदि फल-पेय पीना पसंद है तो आधे फल और शेष फलों के रस का सेवन करें। फल-पेयों का सेवन कम से कम करें।

- छह माह से कम आयु के शिशुओं को फल-पेय न दें।

4952 HRD/10—5 A

- फल के रस बच्चों के लिए दूध का स्थान नहीं ले सकते।

- फलों के रस खनिज लवणों व कुछ विटामिन के अच्छे स्रोत तो होते हैं परंतु ये संतुलित भोजन नहीं होते। अत: अधिक मात्रा में इनका सेवन उचित नहीं है।

अधिकांश फल-पेयों की बोतलों में उनमें विद्यमान कैलोरी और पोषक तत्वों का सही विवरण नहीं दिया जाता न ही यह अंकित होता कि क्या उनका विसंक्रमण किया गया है। निर्माताओं को इसके लिए कड़े दिशा-निर्देश देने चाहिए। फल-पेयों को खरीदने से पूर्व इनका लेबल अवश्य पढ़ें, जिससे इनकी पौष्टिकता और इनके सुरक्षित होने के संबंध में जानकारी प्राप्त हो सके।

आधुनिक जीवनशैली के कारण फलों के रस और पेयों के सेवन का प्रचलन अत्यधिक तेजी से बढ़ रहा है। फल-पेय विभिन्न गुणता के हो सकते हैं। इनके अत्यधिक मात्रा में सेवन के दुष्प्रभाव हो सकते हैं। अत: इनका सेवन सीमित मात्रा में ही उचित है। फलों के रस फल-पेयों और ठंडे पेयों से बेहतर होते हैं। निष्कर्ष यह है कि सबसे उत्तम तो फल ही होते हैं अत: यथासंभव फलों का ही सेवन करें।

ooo

4952 HRD/10—5 B

10

तंत्रिका मूल कोशिकाएं : आशा की नई किरण

• ईश्वरचंद्र शुक्ल
• बृजेश कुमार सिंह
• विनोद कुमार

गत एक दशक से यह मान लिया गया है कि मूल कोशिकाओं (स्टेम सेल) में सभी प्रकार की रक्तोत्पादक कोशिकाओं, लाल रक्त कोशिकाओं, श्वेत रक्त कोशिकाओं और कणिकाओं में विभेदित होने की क्षमता होती है। ये कोशिकाएं अस्थि-मज्जा संवर्धन से विलगित होती हैं और विभिन्न प्रकार की विशिष्ट कोशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं। जबकि कुछ ही वर्षो में बहुशक्य (प्ल्यूरीपोटेंट) कोशिकाएं मनुष्य की भ्रूणीय स्थिति की कोरकपुटी (ब्लास्टोसिस्ट) अवस्था में विलगित होती हैं और तंत्रिका श्रेणी सहित सभी प्रौढ़ कोशिकाओं में विभेदित होने की क्षमता रखती हैं। लगभग एक ही समय यह प्रदर्शित किया जाता रहा कि प्रचलित विश्वास के प्रतिकूल तंत्रिका जनन (न्यूरोजेनेसिस) लगातार जीवन भर मनुष्य में भी मस्तिष्क के कुछ निश्चित भागों में होता रहता है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि इस ज्ञान का लाभ उठाकर इस दिशा में रोगी अथवा मृत तंत्रिका-कोशिकाओं के विस्थापन पर प्रयोग की आशा जगी है।

नवंबर 1998 में थॉमसन एवं उनके सहयोगियों तथा स्नाइडर एवं उनके सहयोगियों ने अलग-अलग विचारधाराओं द्वारा मानव भ्रूणीय मूल कोशिकाओं (एम्ब्रॉयनिक स्टेम सेल) के पृथक्करण के संबंध में स्वतंत्र प्रकाशन की घोषणा की। इन कोशिकाओं का विभेदन केवल सभी प्रकार के ऊतकों में नहीं होता बल्कि इन्हें सावधानीपूर्वक नियंत्रित या आवश्यक परिस्थितियों के संवर्धन में अविभेदित कोशिकाओं की तरह बनाए रखा जा सकता है। भ्रूणीय मूल कोशिकाएं पूर्णशक्य कोशिकाएं (Totipotent cell) होती हैं, जबकि प्रौढ़ अंगों में प्ल्यूरी पोटेंट मूल कोशिकाएँ भी होती हैं, जो त्वचीय ऊतकों, आंत्रीय उपकला ऊतकों में लगातार भरण ऊतकों की तरह विभाजित होती रहती हैं अथवा ये स्तनधारियों के मस्तिष्क में शांतरूप से पड़ी रहती हैं।

अप्रैल 1997 में मैके (Mckay) द्वारा आण्विक जीवविज्ञान प्रयोगशाला राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी तंत्रिकीय अव्यवस्था और घात, वेथेस्डा द्वारा रीढ़धारी प्राणियों के केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (सेंट्रल न्यूरो सिस्टम) में बहुशक्य (मल्टीपोटेन्ट) कोशिकाओं की पहचान की गई। इनकी क्षमता पात्रे में विभिन्न वृद्धि कारकों के अंतर्गत प्रौढ़ मस्तिष्क की तीन प्रकार की मुख्य कोशिकाओं तंत्रिकाक्ष (न्यूरोक्सॉन), ताराणु (एस्ट्रोसाइट) तथा अल्पदंद्रोन (ओलिगोडेंड्राइट) में बदलने की पाई गई। यह शोध-पत्र बाद में 'दि बेस्ट ऑफ साइन्स: न्यूरोसाइन्स' में पुन: प्रकाशित किया गया।

इस विषय पर विशेष ज्ञान प्राप्त करने हेतु यह जानना आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार की कौन-कौन सी कोशकाएं महत्वपूर्ण हैं। मूल कोशिका शब्द का प्रयोग केवल भ्रूणीय व्युत्पन्न कोशिकाओं के लिए ही है, इस भ्रम से बचने के लिए हमें विभिन्न प्रकार की मूल कोशिकाओं को परिभाषित करना होगा।

मूल कोशिकाएं- ये वे कोशिकाएं हैं जिनमें लगातार अपने को विभाजित करने की क्षमता जीवों का निरंतर विस्तार होने तक होती है तथा उनमें कोशिका विभेदन की योग्यता भी होती है। इन कोशिकाओं के संवर्धन में अनंत समय तक विभाजन की क्षमता होती है और ये विशिष्ट कोशिकाओं को जन्म देती हैं।

भ्रूणीय मूल कोशिकाएं : ये भ्रूण से उत्पन्न ऐसी कोशिकाएं होती हैं जिनका विभेदन पहले या बाद में विशिष्ट कोशिकाओं के रोपण से होता है।

पूर्णशक्य कोशिकाएं : ये वे कोशिकाएं होती हैं जिनमें विभेदन की क्षमता सभी तीनों-स्तरों बाह्य त्वचा, मध्यत्वचा और अंतस्त्वचा में होती है। इसके अतिरिक्त ये कोशिकाएं बहिर्भ्रूणीय झिल्ली और ऊतक भी बनाती हैं।

बहुशक्य कोशिकाएं : वे कोशिकाएं हैं जो जनन-स्तर की बाह्य त्वचा तथा मांसपेशियों की अलग-अलग प्रकार की विभिन्न व्युत्पन्न कोशिकाओं को बनाती हैं।

तंत्रिका मूल कोशिकाएं : वे कोशिकाएं होती हैं, जो तंत्रिका ऊतकों, एक या दोनों तंत्रिका कोशिकाओं और ग्लिया (ताराणु, अल्पदंद्रोन कोशिका- ओलिगोडेंड्रोग्लिया) को जन्म देती हैं। यह शब्द मूल कोशिका के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है जो कि भ्रूणीय अथवा प्रौढ़ तंत्रिका तंत्र से विकसित होता है। सामान्यत: यह तंत्रिका ऊतकों में विभेदित होती है। ये कोशिकाएं लंबे समय तक विभेदित नहीं होती हैं हालांकि इनमें तंत्रिका ऊतक में विभेदित होने की क्षमता रहती है।

प्रजनक कोशिकाएं : वे कोशिकाएं होती हैं जिनमें मूल कोशिका की तुलना में अधिक नियंत्रित क्षमता होती है। सामान्यत: ये कोशिकाएं विशिष्ट प्रकार की कोशिकाओं के प्रजनन के लिए उपयुक्त होती हैं।

मूल कोशिकाओं के लिए अनेक परिभाषाएं विभिन्न लेखकों द्वारा दी गई हैं। लेकिन इसकी अनुकूल परिभाषा में निम्नलिखित दो लक्षणों का समावेश होना चाहिए। मूल कोशिकाओं में स्वयं विभाजित करके जीवों के जीवन का विस्तार करने की योग्यता और इनमें विशिष्ट कोशिका-विभेदन की क्षमता होनी चाहिए। बैस्कोई और स्नाइडर ने 1990 में बताया कि मूल कोशिकाओं की सबसे उपयुक्त परिभाषा के लिए अभी भी बहस चल रही है कि इन्हें किस तरह पहचाना जाए तथा लक्षण का प्रदर्शन और प्रचलन किया जाए। लेकिन सुघट्यता का प्रमाण जीवे (in vivo) और पात्रे (in vitro) दोनों में आशानुरूप व्यक्त किया गया है।

तंत्रिकाजनन : उपर्युक्त विचारणा के समय ही एक दूसरी चकित करने वाली घटना घटी। इस क्रम में प्रौढ़ मनुष्य के मस्तिष्क में तंत्रिका कोशिकाओं का बहुगुणन उसी समय प्रकट हुआ जिस समय भ्रूणीय मूल कोशिकाओं की पहचान हो रही थी और जिसकी जानकारी इसके पहले नहीं थी। अब तक यह माना जाता था कि नई तंत्रिका कोशिकाओं की उत्पत्ति केवल भ्रूणीय कोशिकाओं के विकास के समय ही होती है लेकिन अब बिना किसी भ्रम के यह प्रमाणित किया जा चुका है कि मनुष्य के पूरे जीवन-काल में लगातार इनका विकास होता रहता है। यह पहले निम्न जातियों जैसे– छिपकलियों, कुतर कर खाने वाले जीवों और चिड़ियों आदि में देखा गया था। एलिजाबेथ गोल्ड और उनके सहयोगियों ने 1998 में सर्वप्रथम यह देखा कि हिप्पोकैम्पस तथा अधिक विकसित स्तनधारियों के मस्तिष्क में प्रौढ़ तंत्रिका कोशिकाओं का बहुगुणन होता है। इसी के एक वर्ष बाद उन्होंने इस कार्य को बढ़ाया तथा यह सूचित किया कि ललाटिका-पूर्व (प्रि-फ्रंटल) अधस्थ शंख (लो टेम्पोरल) तथा पश्चभित्तीय नव वल्कुटी संबंधी क्षेत्रों में नई तंत्रिका कोशिकाएं बढ़ती हैं। लेकिन यह प्रक्रिया प्रारंभिक संवेदी क्षेत्र में नहीं होती। इसी वर्ष 1998 में गैंग तथा एरिकसन आदि ने भी अलग-अलग यह सूचित किया कि प्रौढ़ तंत्रिका कोशिकाओं का गुणन मानव मस्तिष्क के हिप्पोकैम्पस में होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि तंत्रिका मूल कोशिकाएं न केवल विकासशील स्तनधारी के तंत्रिका-तंत्र में बल्कि मानव सहित सभी स्तनधारी जीवों के तंत्रिका-तंत्र में पाई जाती हैं। इस प्रकार मूल कोशिकाओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है:

(अ) भ्रूणीय मूल कोशिकाएं

(ब) प्रौढ़ मूल कोशिकाएं

भ्रूणीय मूल कोशिकाएं पूर्णशक्य कोशिकाएं होती हैं और इनमें शरीर की किसी भी कोशिका को विकसित करने की क्षमता होती है। भ्रूणीय मूल कोशिकाओं का निर्माण गर्भधारण से चार दिन के भीतर ही हो जाता है। प्रौढ़ मूल

कोशिकाएं अविभेदित कोशिकाएं हैं। ये प्रौढ़ अवस्था में विभेदित ऊतकों, जैसे रक्त अथवा मस्तिष्क, में उपस्थित होती हैं। हाल ही में यह प्रतिपादित किया गया कि ये कोशिकाएं अनेक प्रकार के ऊतकों को जन्म दे सकती हैं।

इस प्रकार मूल कोशिकाएं पूर्णशक्य कोशिकाएं तथा बहुशक्य अथवा विशिष्ट कोशिकाएं हो सकती हैं जो कि रक्त, मष्तिष्क, यकृत आदि से व्युत्पन्न होती हैं। इस विभव का निर्धारण कौन करता है, इसकी जानकारी पूरी तरह से नहीं हो पाई है। यह विश्वास किया जाता है कि ये कोशिकाएं विभाजित और उपविभाजित होती हैं तथा विभेदन हेतु अपना विभव स्थानांतरित करती हैं जो धीरे-धीरे अधिकाधिक नियंत्रित होता जाता है। तथापि कुछ कोशिकाएं, जो कि विशिष्ट ऊतकों से व्युत्पन्न होती हैं, प्ल्यूरीपोटेन्ट विभव धारण किए रहती हैं। ज्ञात हो कि भ्रूणीय मूल कोशिकाओं की भिन्नता, पात्रे में बहुगुणन, पृथक्करण के बहुत पहले प्रौढ़ अस्थि मज्जा (जो कि रक्तोत्पादक मूल कोशिकाओं से भरपूर होती है) का उपयोग रक्त के अक्रम विकार जैसे एप्लास्टिक एनीमिया के उपचार में उपयोग किया जाता रहा है। इसी प्रकार से यह भी ज्ञात किया गया कि गर्भ नाभिरज्जु से व्युत्पन्न कोशिकाओं का विभव एक समान होता है। विगत कुछ वर्षों में प्रयोगशाला में एकत्र आंकड़ों से यह प्रदर्शित होता है कि वे मूल कोशिकाएं भी जो उन स्रोतों के व्युत्पन्न हैं, समुचित परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में विभेदित हो सकती हैं।

यहां सभी बाह्य और आंतरिक तथ्यों का विस्तृत वर्णन करने की अपेक्षा केवल कुछ उदाहरणों की चर्चा की गई है। तथापि यह समझना आवश्यक है कि भ्रूणीय विकास और प्रौढ़ जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियां एक समान हैं पर दोनों एक जैसी नहीं होती हैं। केवल पात्रे में मूल कोशिकाओं के एक बहुगुणन और भिन्नता को ही नहीं उत्पन्न किया जा सकता, बल्कि इसे प्रायोगिक रूप से तंत्रिका शोथ उत्पन्न करने हेतु प्रेरित किया जा सकता है, जिसका परपोषी तंत्रिकातंत्र के साथ समाकलन होता है। शेट्टी और टर्नर ने 1999 में प्रतिपादित किया कि मस्तिष्क व्युत्पन्न (ब्रेन डेरिवेटिव) न्यूरोट्रॉफिक कारक का उपयोग तंत्रिकावर्धन में वृद्धि के लिए होता है। मूल कोशिकाओं के उत्साहवर्धक शोध में कोई संदेह नहीं है, क्योंकि क्षतिग्रस्त, रोगग्रस्त अथवा मृत तंत्रिका कोशिकाओं को पुन:स्थापित करने की इसकी क्षमता का संतोषजनक प्रदर्शन कम से कम पशुओं पर प्रयोगों द्वारा पहले ही किया जा चुका है। अधिक संख्या में तंत्रिकीय अव्यवस्था मनुष्य को प्रभावित करती है, जो उसे जीवन भर के लिए अपंग और लकवाग्रस्त बना देती है। वर्तमान समय में इसका कोई उपचार नहीं है। यह नया विकास आशा की एक नई किरण होगा। यह सत्य है कि प्रौढ़ तंत्रिका तंत्र में बहुगुणन की क्षमता के साथ कोशिकाओं का प्रदर्शन, इसमें पुनर्जनन की क्षमता, पूर्णत: दोषपूर्ण तंत्रिका कोशिकाओं का पुर्नस्थापन, शरीर में घाव का होना, चोट अथवा बड़ी संख्या में विपोषी अव्यवस्था जैसे पार्किन्सन, एल्जाइमर अथवा स्केलरोमा की बीमारी आदि में लगभग असंभव है।

तंत्रिका मूल कोशिकाओं की चिकित्सीय क्षमता : तंत्रिका मूल कोशिका की स्वाभाविक क्षमता के उपयोग की संभावना स्थानीय सूक्ष्म वातावरण के वृद्धि-कारक की उपयोगिता में और आनुवंशिकत: रूपांतरित कोशिकाओं के स्रवण के कारण अथवा पात्रे की तंत्रिका मूल कोशिका के बहुगुणन की चिकित्सा के लिए दिखाई देती है। वास्तव में इसका प्रयोग जानवरों में देखने को मिलता है। विविध स्रोतों द्वारा संचित प्रमाणों के आधार पर यह प्रस्तावित किया गया कि आदमी के बहुशक्य तंत्रिका मूल कोशिकाओं को सफलतापूर्वक अलग किया जा सकता है और लगातार आनुवंशिकी के द्वारा संवर्धन में संतुलन और पश्चात माध्यआण्विक चिकित्साओं के लिए कोशिकीय माध्यम का कार्य सप्रतिबंध उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार मनुष्य के केंद्रीय तंत्र में कोशिका प्रतिस्थापन में होता है।

सर्वप्रथम आरवाक एवं उनके सहयोगियों ने सन् 2000 में अपने शोध कार्य में प्रमाणित किया कि पात्रे में यदि चूहे के मस्तिष्क में केंद्रीय तंत्र विस्तार का पूर्वगामी अध्यारोपण किया जाए तो उसमें वैद्युत क्रियाशील और फलत: जुड़े तंत्रिकाक्ष बनते हैं। ये तंत्रिकाक्ष सतत और पश्च-अंतर्ग्रथन (पोस्ट-सिनेप्टिक) घटना की पुनरावृत्ति और नाभिकीय ग्लूटामेट अनुप्रयोग की प्रतिक्रिया को प्रदर्शित करते हैं। ये नखर वानर (मारमोसेट) में भी ठीक उसी प्रकार प्रदर्शित होते हैं।

कृंतकों (रोडेंट) और निम्नवर्गीय स्तनधारियों में तंत्रिका मूल कोशिकाओं के जीवन, उनके पृथक्करण, संवर्धन और अध्यारोपण का प्रयास 1990 में किया गया। अभी हाल ही में पाया गया कि ऐसा ही आयाम मनुष्य की तंत्रिका मूल कोशिकाओं में होता है। आज तक विदित कुछ तथ्यों को दृढ़तापूर्वक प्रमाणित करने में सफलता नहीं मिली है। इसमें संदेह नहीं है कि इस क्षेत्र में और अधिक शोध की आवश्यकता है जिससे कमियों का निवारण और सीमाओं का अतिक्रमण किया जा सके, तभी वे समस्याएँ सुलझ पाएंगी, जिनका समाधान अभी तक नहीं हो सका है।

चिकित्सीय जीन उत्पादन के लिए तंत्रिका प्रजनक : तंत्रिका मूल कोशिका लुप्त या नष्ट होने वाले ऊतकों के प्रतिस्थापन के अतिरिक्त मस्तिष्क में सीधे चिकित्सीय जीन उत्पादों को डालने में भी सहायक होती है। तंत्रिकीय प्रजनक आनुवंशिक हेरफेर और तंत्रिप्रेषी (न्यूरोट्रांसमीटर) न्यूरोट्राफिक कारकों और चयापचयी एन्जाइमों के लिए बहिर्जात जीनों की अभियांत्रिकी हेतु आदर्श माने जाते हैं। तंत्रिका मूल कोशिकाएं मस्तिष्क में गाँठ के उपचार में चिकित्सीय माध्यम की तरह भी प्रयुक्त हो सकती हैं।

अभी हाल ही में (नोबल 2000) ग्लायोमा के लिए चिकित्सीय समानता का विकास किया गया जिसमें प्रतिरक्षा चिकित्सा (इम्यूनोथिरैपी) और तंत्रिका मूल कोशिकाओं का समावेश है। लगभग उसी समय (वनेडेटी आदि 2001) तंत्रिका मूल कोशिकाओं में चिकित्सीय अणुओं को उत्पन्न करने के लिए अभियंत्रित करने की क्षमता (मस्तिष्क के श्वेतद्रव्य में नियोप्लास्टिक कोशिकाओं की तरह जाने का) का पता भी लगाया गया।

मूल कोशिकाओं की क्षमता का उपयोग निम्नलिखित है: सर्वप्रथम यह लुप्त या नष्ट होने वाले ऊतकों के स्थानांतरण के उपयोग में लाई जाती है। इसके अतिरिक्त आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा तंत्रिप्रेषी, न्यूरोट्रॉफिक कारक चयापचयी एन्जाइमों के बहिर्जात निश्चितता हेतु, बाह्य जीवे जीन चिकित्सा के लिए यथा स्थानांतरण जीनों को गाँठ वृद्धि अवरोधक के रूप में अभियंत्रित करने में भी इसका उपयोग होता है तथा यह तंत्रिकीय विकास की सामान्य प्रक्रिया की खोज के उद्देश्य में भी उपयोगी हो सकता है।

जैव तकनीक विभाग के निरंतर प्रयत्नों के कारण देश के कई समूह मूल कोशिका खोज में सक्रिय हैं। तंत्रिका मूल कोशिका शोध के क्षेत्र में राष्ट्रीय मस्तिष्क शोध संस्थान, मानेसर महत्वपूर्ण स्थान रखता है। डॉ. श्यामलामणि के निर्देशन में स्थापित यह समूह प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। यह समूह पृथक्करण, संवर्धन और कृंतक भ्रूणीय कोशिकाओं को अनेक प्रकार के तंत्रिकाक्ष की विभिन्नता की जानकारी के लिए मानक उन्नत विधियाँ विकसित कर रहा है। तंत्रिका-तंत्र के नष्ट होने वाले भागों के प्रतिस्थापन हेतु प्रयोग किए जा रहे हैं। इस समूह ने अन्यत्र प्राप्त मानव की भ्रूणीय मूल कोशिकाओं द्वारा विशिष्ट कोशिकाधारियों को उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। आशा की जाती है कि यह विधि मानकीकृत होने के बाद सफल होगी। वह समय दूर नहीं है, जब इसका संभावित परीक्षण स्वदेशी ढंग से विकसित हो सकेगा।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि तंत्रिका मूल कोशिका शोध के क्षेत्र में स्मरणीय कार्य हो रहा है। इसमें मनुष्य की तंत्रिका मूल कोशिकाओं का पृथक्करण और पात्रे संवर्धन का भी समावेश है। मस्तिष्क के कुछ सीमित क्षेत्रों में तंत्रिका का बनना हमें इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है कि उन विधियों को खोजा जाए जिनके द्वारा वर्तमान मूल कोशिकाओं के लिए ऐसी लाभदायक क्रियाशील नाड़ी कोशिकाओं को पैदा किया जा सके जो कि अभिघात, हृदय घात तथा अपह्रासन (डिजनेरेशन) के उपचार हेतु सहायक हो सकें। स्पष्ट है कि वर्तमान जानकारी के आधार पर हमें इस दिशा में अथक प्रयास तथा अनेक प्रयोग करने होंगे।

11

ग्रहण: वैज्ञानिक तथ्य

• डॉ. नवीन कुमार बौहरा

प्राय: समाचार पत्रों में ग्रहण (सूर्यग्रहण एवं चंद्रग्रहण) के समय एवं इसके प्रभावों आदि के बारे में जानकारी अथवा सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। कुछ समय पूर्व 22 जुलाई 2009 को पूर्ण सूर्यग्रहण हुआ था। यह ग्रहण भारत, चीन, नेपाल सहित एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में दिखाई पड़ा था। सामान्यत: लोगों को ग्रहण को न देखने एवं इससे बचने की अपील की जाती है, परंतु खगोलशास्त्री सभी विपरीत परिस्थितियों एवं सीमित साधनों के बावजूद प्रत्येक ग्रहण को देखने एवं इसका अध्ययन करने के लिए प्रयासरत रहते हैं।

ग्रहण संबंधी घटनाओं में से कुछ आकर्षण का केंद्र बनती हैं तथा कुछ जानी-अनजानी ही रहकर लुप्त हो जाती हैं। वास्तव में ग्रहण कोई भयानक विपदा न होकर एक सामान्य प्राकृतिक घटना है, जिसे धर्म-गुरुओं एवं अंधविश्वासी लोगों ने eclipse शब्द के ग्रीक भाषा में 'अदृश्यपन' के अर्थ के कारण कुप्रभाव से जोड़कर जन साधारण को भयाक्रांत बनाए रखा। आज भी इन ग्रहणों के बारे में अनेक प्रकार की कहानियां तथा किंवदंतियां प्रचलित हैं। ऐसी कहानियों में से कुछ यहां दी जा रही हैं।

भारतीय कहानियाँ : हमारे देश के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि स्वर्भानु नामक राक्षस सूर्य को निगलकर धरती को अंधकारमय कर देता है। सूर्य को इस संकट से छुड़ाने के लिए देवता ऋषियों आदि को बुलाते हैं तथा वे कुछ श्लोकों का जप कर, सूर्य को स्वर्भानु से मुक्त करा देते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में किया गया सूर्य के बदलते रूप का वर्णन आज के ग्रहण-मुक्त होते सूर्य से बहुत मिलता-जुलता है।

'महाभारत' की जयद्रथ-वध की घटना को कुछ लोग सूर्यग्रहण से जोड़ते हैं जबकि अन्य इसे काल्पनिक मानते हैं।

भारत में प्रचलित एक अन्य मान्यता के अनुसार ग्रहण के समय राहु एवं केतु नामक दो राक्षस सूर्य एवं चंद्रमा को ग्रस लेते हैं।

कोलंबस की कहानी : एक किंवदंती के अनुसार कोलंबस भारत की खोज में भटकता हुआ जब पश्चिमी द्वीप पर पहुँचा तो उसका सारा खाने-पीने का सामान समाप्त हो चुका था तथा वहाँ के निवासियों ने उन्हें खाना देने से मना कर दिया था। कोलंबस को ग्रहण की जानकारी थी तथा उस दिन भाग्यवश चंद्रग्रहण था। अत: उसने उन लोगों को धमकी दी कि यदि उन्होंने खाना नहीं दिया तो वह उन्हें आज (उस दिन अर्थात् 1 मार्च 1504 ई. को) चंद्रमा के प्रकाश से वंचित कर देगा। पहले तो लोगों ने उस पर विश्वास नहीं किया परंतु जब रात्रि में चांद पर ग्रहण लगना शुरू हुआ तो लोग भयभीत होकर उसके पैरों पर गिर पड़े तथा इस प्रकार उसने अपनी एवं अपने साथियों की प्राण-रक्षा की।

चीनी किवंदंतियाँ : चीनी लोगों का मानना था कि ग्रहण राक्षस द्वारा सूर्य अथवा चंद्रमा को निगलने के प्रयास के कारण ही होता है। चीन के प्रसिद्ध प्राचीन इतिहास ग्रंथ 'शू चिंग' के अनुसार चीन के सम्राट याओ द्वारा सी एवं हो नामक खगोल-विज्ञानियों को सूर्यग्रहण की सही भविष्यवाणी करने एवं ग्रहण न लगने देने की जिम्मेदारी सौंप रखी थी तथा ऐसा न कर पाने पर उन्हें मृत्युदंड दे दिया गया था। इसी प्रकार चीन के अन्य ग्रंथों 'चुन् नियु', 'सी चुआन्' एवं 'शिव विंग्' में भी ग्रहणों का उल्लेख मिलता है।

विदेशी कहानियां: इसी प्रकार 'सोलोमन की खदानें' (सर हैनरी राइडर टैगार्ड द्वारा 1885 में लिखित) कहानी में अफ्रीका में एक दल को कबीले वालों द्वारा पकड़े जाने पर नायक एक युवती (फाल्टा) की जान यह कहकर बचाता है कि वह चंद्रमा को अंधकार-ग्रस्त कर सकता है। इस उपन्यास पर आधारित कई फिल्में भी बनी हैं। ग्रहण का वर्णन करने वाली कई कहानियाँ भी है। 'आर्थर के राज्य में एक अमरीकी' (मार्क ट्वेन द्वारा लिखित) एवं 'सूरज के कैदी' (फ्रांसीसी कहानी) ऐसी ही कहानियां हैं।

वैज्ञानिक तथ्य : जब किसी वस्तु पर कुछ दूरी पर स्थित प्रकाश-स्रोत से प्रकाश पड़ता है तथा इस स्रोत के मध्य यदि कोई अन्य वस्तु आ जाती है तो उसकी प्रच्छाया (अंब्रा) प्रकाशमान वस्तु पर पड़ती है। यदि प्रकाश-स्रोत विस्तृत हो तो छाया के तीन अलग-अलग क्षेत्र दिखाई देंगे, जिन्हें पूर्ण प्रच्छाया, आंशिक प्रच्छाया एवं वलयाकार प्रच्छाया कहते हैं। इस प्रकार ग्रहण एक प्राकृतिक घटना है, जिसमें सूर्य, चंद्रमा एवं पृथ्वी तीनों ग्रह एक ही सीधी रेखा में आ जाते हैं।

यदि चंद्रमा तथा पृथ्वी की कक्षा एक ही तल पर होती तो प्रत्येक अमावस्या एवं पूर्णिमा को सूर्य एवं चंद्रग्रहण लगा करते परंतु चंद्रमा एवं पृथ्वी के कक्षा तल एक दूसरे से 5 डिग्री का कोण बनाते हैं। अत: नियमित रूप से ग्रहण नहीं लगते हैं। ग्रहण मुख्यत: दो प्रकार के मान सकते हैं:

(1) सूर्यग्रहण एवं (2) चंद्रग्रहण

सूर्यग्रहण- सूर्यग्रहण के समय चंद्रमा परिक्रमण करते-करते पृथ्वी एवं सूर्य के बीच आ जाता है तथा इसकी छाया पड़ने से सूर्य का कोई भाग दिखाई नहीं देता। सूर्यग्रहण हेतु दो अनिवार्य शर्तें हैं-

(i) अमावस्या अर्थात चंद्रमा रहित रात्रि होनी चाहिए तथा

(ii) चंद्रमा क्रांतिमंडल पर हो या इसके समीप हो। यदि चंद्रमा का परिक्रमा-पथ, पृथ्वी के परिक्रमा-पथ की सीध में होता तो सूर्यग्रहण लगभग हर महीने होता परंतु सामान्यत: ऐसा नहीं होता है। सूर्यग्रहण तीन प्रकार का हो सकता है- आंशिक, पूर्ण या खग्रास तथा चक्राकार।

(क) **आंशिक सूर्य ग्रहण-** इस स्थिति में पृथ्वी पर दर्शक की स्थिति से चंद्रमा की प्रच्छाया होने से सूर्य आंशिक रूप से ढका दिखाई देता है जिसे आंशिक या खंड सूर्यग्रहण कहते हैं।

(ख) **पूर्ण सूर्यग्रहण-** इस स्थिति में दर्शक की स्थिति पृथ्वी पर चंद्रमा की प्रच्छाया में होती है तथा उसे संपूर्ण सूर्य नहीं दिखाई देता। ऐसी स्थिति को पूर्ण या खग्रास सूर्यग्रहण कहते हैं।

(ग) **चक्राकार सूर्यग्रहण-** ऐसी अवस्था में चंद्रमा की प्रच्छाया, पृथ्वी तक नहीं पहुंच पाती है तथा दर्शक की स्थिति इसके ठीक नीचे होती है। इससे चंद्रमा की गोल छाया सूर्य के मध्य दिखाई देती है तथा सूर्य का प्रकाश चारों ओर छल्ले की भांति दिखाई देता है, जिसे चक्राकार सूर्यग्रहण कहते हैं।

वास्तव में सूर्यग्रहण के दौरान कुछ ऐसी खगोलीय घटनाएं घटित होती हैं जो सामान्यत: नहीं घटतीं। प्राचीन काल से ही खगोलविज्ञानियों की मान्यता थी कि सूर्य एवं खगोलीय मंडल में कुछ ऐसे तत्व मौजूद हैं जो पृथ्वी पर नहीं मिलते हैं। इसी प्रकार पूर्ण या खग्रास सूर्यग्रहण के दौरान ही कुछ ऐसी विशेष घटनाएँ घटित होती हैं जो आंशिक या वलयाकार सूर्यग्रहण में नहीं दिखाई पड़तीं। इसमें बेली'ज बीड्स (बेली के मनके) जैसी आकृति बनती है। जैसे-जैसे पूर्ण या खग्रास ग्रहण बढ़ता है, इसके 10-15 मिनट पूर्व सूर्य की रोशनी एवं तापमान में कमी होती है। इसके साथ ही सूर्य पर कुछ लहरदार पट्टियां दिखाई देती हैं जो पृथ्वी के वायुमंडल में होने वाली गतिविधियों के बीच से सूर्य की रोशनी गुजरने पर प्रकाश के अपवर्तन के कारण होती है। जब चंद्रमा सूर्य को पूरी तरह ढकता है तो सूर्य के चारों ओर वलयाकार संरचनाएँ दिखाई देती हैं जिन्हें फ्रांसीसी वैज्ञानिक बेली के नाम पर बेली'ज बीड्स कहते हैं।

सौर किरीट- ग्रहण के समय जब सूर्य का पूर्ण बिंब चंद्रमा की प्रच्छाया से ढक जाता है तो सूर्य की सतह से जीभ के आकार की लाल रंग की सौर ज्वालाएँ उठती हुई दिखाई देती हैं जो खग्रास समाप्त होते ही अदृश्य होती

जाती हैं। इन ज्वालाओं के नीचे गुलाबी रंग के वर्णमंडल और मोती के समान चमकती आभा को सौर किरीट कहते हैं। सूर्य के छिप जाने पर गोधूली-वेला का-सा मध्यम प्रकाश हो जाता है तथा आकाश में ग्रह तथा चमकीले तारे दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

चंद्रग्रहण - उपग्रह होने के कारण चंद्रमा अपने अंडाकार कक्ष तल पर पृथ्वी का लगभग एक माह में पूर्ण चक्कर लगा लेता है। चंद्रमा एवं पृथ्वी परिक्रमा करते हुए सूर्य की सीधी रेखा में साधारणत: नहीं आते। यदि अपवाद-स्वरूप पूर्णिमा की रात्रि को परिक्रमा करता हुआ चंद्रमा, पृथ्वी के कक्ष तल के समीप पहुँच जाए एवं पृथ्वी की स्थिति सूर्य एवं चंद्रमा के बीच एक रेखा में ही हो, तब पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ती है तथा ऐसी स्थिति को चंद्रग्रहण कहते हैं।

यदि यह छाया आंशिक रूप से पड़ती है तो उसे आंशिक चंद्रग्रहण तथा पूर्ण रूप से पड़ने पर खग्रास या पूर्ण चंद्रग्रहण कहते हैं। इस प्रकार चंद्रग्रहण हेतु चंद्रमा पूर्वकला से चमकता होना चाहिए तथा यह क्रांतिवृत्त के समीप होना आवश्यक है। चंद्रग्रहण के समय चंद्रमा एकदम काला न होकर धुंधला सुर्ख अथवा ताम्रवर्णी होता है।

अन्य ग्रहों पर ग्रहण - वैज्ञानिकों द्वारा पृथ्वी के अतिरिक्त सौरमंडल के अन्य ग्रहों पर भी ग्रहण का अध्ययन किया जा रहा है, जिससे कई उपयोगी जानकारियां प्राप्त हुई हैं। पृथ्वी से बृहस्पति के उपग्रहों का गहन अध्ययन किया गया, जिससे खगोल विज्ञान में ग्रहण की दो स्थितियों तथा अपगूहन या लोप (ऑकल्टेशन) तथा पारगमन (ट्रांजिट) के बारे में विशेष अध्ययन किया गया। वस्तुत: ऑकल्टेशन या अपगूहन का अर्थ है– किसी बड़े आकाशीय पिंड का अपने से बहुत छोटे आकार के पिंड के पीछे छिपा दिखाई देना। जैसे चंद्रमा के पीछे किसी तारे, नेबुला या ग्रह का छिपा दिखाई देना। ट्रांजिट वह अवस्था है, जिसमें कोई छोटा आकाशीय पिंड किसी बड़े आकाशीय पिंड की चकती के ऊपर से गुजरता हुआ दिखाई देता है। बृहस्पति के अलावा शुक्र एवं बुध ग्रह सूर्य के प्रति इसी प्रकार का ट्रांजिट प्रदर्शित करते हैं। धरती से देखने पर सूर्य पर चमकदार चकती के ऊपर छोटे-काले एवं गोल पिंड के गुजरने को ही बुध का पारगमन कहते हैं। पृथ्वी बुध की कक्षा के पास से 7 मई एवं 9 नवंबर को तथा शुक्र की परिक्रमा कक्ष के पास से 7 जून एवं 8 दिसंबर को गुजरती है तथा इनमें बुध का पारगमन 7 वर्ष बाद एवं शुक्र का पारगमन 8 वर्ष के अंतराल पर होता है।

सूर्य या चंद्रग्रहण कब-कब : चंद्रमा एवं सूर्य क्रमबद्ध रूप से अपनी स्थिति में पुन: लौटते हैं जिससे ग्रहण नियमित अंतराल में होते रहते हैं। यह समयांतराल 'सेरोस' अर्थात चांद्र चक्र कहलाता है जो लगभग 6,585.3 दिन या 18 वर्ष एवं 9 से 11 दिन का होता है।

सेरोस के बारे में बेबिलोनिया के निवासी भी जानते थे। उनके अनुसार सूर्य 19 चक्कर के बाद पुन: उसी स्थिति में लौटता है जहाँ से शुरू होता है। एक सेरोस में लगभग 70 सूर्यग्रहण होते हैं।

सामान्यत: प्रति 10 वर्ष में 15 चंद्रग्रहण एवं 23 सूर्यग्रहण होते हैं। प्रति 10 वर्ष में 8 आंशिक, 7 पूर्ण एवं 8 चक्राकार सूर्यग्रहण होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष अधिक से अधिक 3 तथा न्यूनतम शून्य चंद्रग्रहण हो सकते हैं। इसी प्रकार एक वर्ष में अधिकतम 7 तथा कम से कम दो सूर्यग्रहण पड़ सकते हैं। खगोलशास्त्री ग्रहों की चाल के आधार पर गणित लगाकर इनकी भविष्यवाणी करते हैं।

22 जुलाई 2009 को पूर्ण सूर्यग्रहण भारत समेत नेपाल, बंगलादेश, भूटान, म्यांमार एवं चीन में देखा गया था तथा यह 6 मिनट 39 सेकण्ड तक रहा था।

ooo

सूर्यग्रहण कब-कब

क्र.सं.	दिनांक	प्रकार	समय
1	26 जनवरी 2009	चक्राकार	7 मि. 54 से.
2	22 जुलाई 2009	पूर्ण	6 मि. 39 से.
3	15 जनवरी 2010	चक्राकार	11 मि. 8 से.
4	11 जुलाई 2010	पूर्ण	5 मि. 20 से.
5	4 जनवरी 2011	आंशिक	.....
6	01 जून 2011	आंशिक	.....
7	01 जुलाई 2011	आंशिक	.....
8	25 नवंबर 2011	आंशिक	.....
9	20 मई 2012	चक्राकार	5 मि. 46 से.
10	13 नवंबर 2012	पूर्ण	4 मि. 2 से.
11	10 मई 2013	चक्राकार	6 मि. 3 से.
12	3 नवंबर 2013	संकर	1 मि. 40 से.
13	29 अप्रैल 2014	चक्राकार	.....
14	23 अक्टूबर 2014	चक्राकार	.....
15	20 मार्च 2015	पूर्ण	2 मि. 47 से.
16	13 सितंबर 2015	आंशिक	.....
17	9 मार्च 2016	पूर्ण	4 मि. 9 से.
18	1 सितंबर 2016	चक्राकार	3 मि. 6 से.
19	26 फरवरी 2017	चक्राकार	0 मि. 44 से.
20	21 अगस्त 2017	पूर्ण	2 मि. 40 से.
21	15 फरवरी 2018	आंशिक	.....
22	13 जुलाई 2018	आंशिक	.....

23	11 अगस्त 2018	आंशिक	.....
24	6 जनवरी 2019	आंशिक	.....
25	2 जुलाई 2019	पूर्ण	4 मि. 33 से.
26	26 दिसंबर 2019	चक्राकार	3 मि. 39 से.
27	21 जून 2020	चक्राकार	0 मि. 38 से.
28	14 दिसंबर 2020	पूर्ण	2 मि. 10 से.
29	10 जून 2021	चक्रकार	3 मि. 51 से.
30	4 दिसंबर 2021	पूर्ण	1 मि. 54 से.
31	30 अप्रैल 2022	आंशिक	.....
32	25 अक्टूबर 2022	आंशिक	.....
33	20 अप्रैल 2023	संकर	1 मि. 16 से.
34	14 अक्टूबर 2023	चक्राकार	5 मि. 17 से.
35	8 अप्रैल 2024	पूर्ण	4 मि. 28 से.
36	2 अक्टूबर 2024	चक्राकार	7 मि. 51 से.
37	29 मार्च 2025	आंशिक	.....
38	21 सितंबर 2025	आंशिक	.....
39	17 फरवरी 2026	चक्राकार	2 मि. 20 से.
40	12 अगस्त 2019	पूर्ण	2 मि. 18 से.
41	6 जुलाई 2027	चक्राकार	7 मि. 51से.
42	2 अगस्त 2027	पूर्ण	6 मि. 23 से.
43	26 जनवरी 2028	चक्राकार	10 मि. 27 से.
44	22 जुलाई 2028	पूर्ण	5 मि. 10से.
45	14 जनवरी 2029	आंशिक	.....
46	12 जून 2029	आंशिक	.....
47	11 जुलाई 2029	आंशिक	.....

48	5 दिसंबर 2029	आंशिक	.....
49	1 जून 2030	चक्राकार	5 मि. 21 से.
50	25 नवंबर 2030	पूर्ण	3 मि. 44 से.
51	21 मई 2031	चक्राकार	5 मि. 26 से.
52	14 नवंबर 2031	संकर	1 मि. 8 से.
53	9 मई 2032	चक्राकार	0 मि. 22 से.
54	3 नवंबर 2032	आंशिक	.....
55	30 मार्च 2033	पूर्ण	2 मि. 37 से.
56	23 सितंबर 2033	आंशिक	.....
57	20 मार्च 2034	पूर्ण	4 मि. 9 से.
58	12 सितंबर 2034	चक्राकार	2 मि. 58 से.
59	9 मार्च 2035	चक्राकार	0 मि. 48 से.
60	2 सितंबर 2035	पूर्ण	2 मि. 54 से.
61	27 फरवरी 2036	आंशिक	.....
62	23 जुलाई 2036	आंशिक	.....
63	21 अगस्त 2036	आंशिक	.....
64	16 जनवरी 2037	आंशिक	.....
65	13 जुलाई 2037	पूर्ण	3 मि. 58 से.
66	5 जनवरी 2038	चक्राकार	3 मि. 18 से.
67	2 जुलाई 2038	चक्राकार	1 मि. 0 से.
68	26 दिसंबर 2038	पूर्ण	2 मि. 18 से.
69	21 जून 2039	चक्राकार	4 मि. 5 से.
70	15 दिसंबर 2039	पूर्ण	1 मि. 51 से.
71	11 मई 2040	आंशिक	.....

72	4 नवंबर 2040	आंशिक	.....
73	30 अप्रैल 2041	पूर्ण	1 मि. 51 से.
74	25 अक्टूबर 2041	चक्राकार	6 मि. 7 से.
75	20 अप्रैल 2042	पूर्ण	4 मि. 51 से.
76	14 अक्टूबर 2042	चक्राकार	7 मि. 44 से.
77	9 जनवरी 2043	पूर्ण	.....
78	3 अक्टूबर 2043	चक्राकार	.....
79	28 फरवरी 2044	चक्राकार	2 मि. 27 से.
80	23 अगस्त 2044	पूर्ण	2 मि. 4 से.
81	16 फरवरी 2045	चक्राकार	7 मि. 47 से.
82	12 अगस्त 2045	पूर्ण	6 मि. 6 से.
83	5 फरवरी 2046	चक्राकार	9 मि. 42 से.
84	2 अगस्त 2046	पूर्ण	4 मि. 51 से.
85	26 जनवरी 2047	आंशिक	.....
86	23 जून 2047	आंशिक	.....
87	22 जुलाई 2047	आंशिक	.....
88	16 दिसंबर 2047	आंशिक	.....
89	11 जुलाई 2048	चक्राकार	4 मि.58 से.
90	5 दिसंबर 2048	पूर्ण	3 मि. 28से.
91	31 मई 2049	आंशिक	4 मि. 45 से.
92	25 नवंबर 2049	संकर	.....
93	20 मई 2049	संकर	.....
94	14 नवंबर 2049	.....	.....

चंद्रग्रहण कब-कब

क्र.सं.	दिनांक	प्रकार	समय
1	9 फरवरी 2009	चक्राकार	.....
2	7 जुलाई 2009	चक्राकार	.....
3	6 अगस्त 2009	चक्राकार	.....
4	31 दिसंबर 2009	आंशिक	1 घंटा 2 मि.
5	26 जून 2011	आंशिक	1 घंटा 4 मि.
6	21 दिसंबर 2010	पूर्ण	3 घंटा 29 मि.
7	15 जून 2011	पूर्ण	3 घंटा 40 मि.
8	10 दिसंबर 2011	पूर्ण	3 घंटा 40 मि.
9	4 जून 2012	आंशिक	2 घंटा 8 मि.
10	28 नवंबर 2012	चक्राकार	.....
11	25 अप्रैल 2013	आंशिक	0 घंटा 32 मि.
12	25 मई 2013	चक्राकार	.....
13	18 अक्टूबर 2013	चक्राकार	.....
14	15 अप्रैल 2014	पूर्ण	3 घंटा 35 मि.
15	8 अक्टूबर 2014	पूर्ण	3 घंटा 20 मि.
16	4 अप्रैल 2015	पूर्ण	3 घंटा 30 मि.
17	28 सितंबर 2015	पूर्ण	3 घंटा 21 मि.
18	23 अक्टूबर 2016	चक्राकार	.....
19	18 अगस्त 2016	चक्राकार	.....
20	16 सितंबर 2016	चक्राकार	.....
21	11 फरवरी 2017	चक्राकार	.....
22	7 अगस्त 2017	आंशिक	1 घंटा 57 मि.
23	31 जनवरी 2018	पूर्ण	3 घंटा 23 मि.

24	27 जुलाई 2018	पूर्ण	3 घंटा 23 मि.
25	21 जनवरी 2019	पूर्ण	3 घंटा 17 मि.
26	16 जुलाई 2019	आंशिक	2 घंटा 59 मि.
27	10 जनवरी 2020	चक्राकार	.....
28	5 जून 2020	चक्राकार	.....
29	5 जुलाई 2020	चक्राकार	.....
30	30 नवंबर 2020	चक्राकार	.....
31	26 मई 2021	पूर्ण	3 घंटा 8 मि.
32	19 नवंबर 2021	आंशिक	3 घंटा 29 मि.
33	16 मई 2022	पूर्ण	3 घंटा 28 मि.
34	8 नवंबर 2022	पूर्ण	3 घंटा 40 मि.
35	5 मई 2023	चक्राकार	.....
36	28 अक्टूबर 2023	आंशिक	1 घंटा 19 मि.
37	25 नवंबर 2024	चक्राकार	.....
38	18 सितंबर 2024	आंशिक	1 घंटा 15 मि.
39	14 मार्च 2025	पूर्ण	3 घंटा 39 मि.
40	7 सितंबर 2025	पूर्ण	3 घंटा 30 मि.
41	3 मार्च 2026	पूर्ण	3 घंटा 28 मि.
42	28 अगस्त 2026	आंशिक	3 घंटा 19 मि.
43	20 फरवरी 2027	चक्राकार	.....
44	18 जुलाई 2027	चक्राकार	.....
45	17 अगस्त 2027	चक्राकार	.....
46	12 जनवरी 2028	आंशिक	0 घंटा 59 मि.
47	6 जुलाई 2028	आंशिक	2 घंटा 23 मि.
48	31 दिसंबर 2028	पूर्ण	3 घंटा 30 मि.

49	26 जून 2029	पूर्ण	3 घंटा 40 मि.
50	20 दिसंबर 2029	पूर्ण	3 घंटा 34 मि.
51	15 जून 2030	आंशिक	2 घंटा 25 मि.
52	9 दिसंबर 2030	चक्राकार	.....
53	7 मई 2031	चक्राकार	.....
54	5 जून 2031	चक्राकार	.....
55	30 अक्टूबर 2031	चक्राकार	.....
56	25 अप्रैल 2032	पूर्ण	3 घंटा 32 मि.
57	18 अक्टूबर 2032	पूर्ण	3 घंटा 17 मि.
58	14 अगस्त 2033	पूर्ण	3 घंटा 36 मि.
59	8 अक्टूबर 2033	पूर्ण	3 घंटा 24 मि.
60	3 अप्रैल 2034	चक्राकार	.....
61	28 सितंबर 2034	आंशिक	0 घंटा 31 मि.
62	22 फरवरी 2035	चक्राकार	.....
63	19 अगस्त 2035	आंशिक	1 घंटा 19 मि.
64	11 फरवरी 2036	पूर्ण	3 घंटा 23 मि.
65	7 अगस्त 2036	पूर्ण	3 घंटा 52 मि.
66	31 जनवरी 2037	पूर्ण	3 घंटा 18 मि.
67	27 जुलाई 2037	आंशिक	3 घंटा 18 मि.
68	21 जनवरी 2038	चक्राकार	.....
69	17 जून 2038	चक्राकार	.....
70	16 जुलाई 2038	चक्राकार	.....
71	11 दिसंबर 2038	चक्राकार	.....
72	6 जून 2039	आंशिक	3 घंटा 0 मि.
73	30 नवंबर 2039	आंशिक	3 घंटा 27 मि.
74	30 मई 2040	पूर्ण	3 घंटा 31 मि.

75	18 नवंबर 2040	पूर्ण	3 घंटा 41 मि.
76	16 मई 2041	आंशिक	1 घंटा 01 मि.
77	8 नवंबर 2041	आंशिक	1 घंटा 32 मि.
78	5 अप्रैल 2042	चक्राकार	.....
79	29 सितंबर 2042	आंशिक	1 घंटा 11 मि.
80	28 अक्टूबर 2042	चक्राकार	.....
81	25 मार्च 2043	पूर्ण	3 घंटा 35 मि.
82	19 सितंबर 2043	पूर्ण	3 घंटा 27 मि.
83	13 मार्च 2044	पूर्ण	3 घंटा 30 मि.
84	7 सितंबर 2044	पूर्ण	3 घंटा 27 मि.
85	3 मार्च 2045	चक्राकार	.....
86	27 अगस्त 2045	चक्राकार	.....
87	22 जनवरी 2046	आंशिक	0 घंटा 53 मि.
88	18 जुलाई 2046	आंशिक	1 घंटा 56 मि.
89	12 जनवरी 2047	पूर्ण	3 घंटा 30 मि.
90	7 जुलाई 2047	पूर्ण	3 घंटा 39 मि.
91	1 जनवरी 2048	पूर्ण	3 घंटा 35 मि.
92	26 जून 2048	आंशिक	2 घंटा 40 मि.
93	20 दिसंबर 2048	चक्राकार	.....
94	17 मई 2049	चक्राकार	.....
95	15 जून 2049	चक्राकार	.....
96	9 नवंबर 2049	चक्राकार	.....
97	6 मई 2050	पूर्ण	3 घंटा 27 मि.
98	30 अक्टूबर 2050	पूर्ण	3 घंटा 14 मि.

ooo

12

पर्यावरण एवं प्रदूषण

• डॉ. राज कुमार साह

पर्यावरण का सामान्य अर्थ हमारे आसपास की वस्तुओं से है, जिससे हम प्रभावित होते हैं। मनुष्य इस धरती पर उपस्थित जीवों में सबसे उन्नत प्राणी है। अच्छा जीवन यापन करने के लिए हमारे आस-पास की चीजें सही हों, और उनकी हमारे दैनिक जीवन पर धनात्मक अनुक्रिया हो, इसकी आवश्यकता है। पृथ्वी पर पर्यावरण की विविधता है। इसी विविधिता के अनुरूप जीव-जंतु अपने स्वभाव तथा आचरण को निर्धारित करते हैं।

पर्यावरण को दो श्रेणियों में बाँटा गया है :

1. भौतिक पर्यावरण (Physical Environment): भौतिक पर्यावरण के अंतर्गत ताप, प्रकाश, मिट्टी, जल, आर्द्रता, हवा, ऊर्जा तथा ऐसे अन्य बाह्य तत्व आते हैं जिनका प्रभाव जीवों पर पड़ता है।

2. सजीव पर्यावरण (Living Environment): सजीव पर्यावरण के अंतर्गत जीव-जंतुओं के परस्पर प्रभाव शामिल हैं। इसके अंतर्गत जीवों के तथा पेड़-पौधों के आपसी संबंध महत्वपूर्ण हैं।

प्रकृति में सजीव पर्यावरण तथा भौतिक पर्यावरण के तत्वों के बीच एक समानुपातिक संतुलन बना हुआ है। इसे प्रकृति स्वत: नियंत्रित करती है। इसमें छेड़-छाड़ के कारण इसके संतुलन में गड़बड़ी उत्पन्न होती है, जिस के कारण जीवों का जीवन-यापन कठिन होता है। पर्यावरण के तत्वों से छेड़छाड़ के कारण हुए प्रकृति के रासायनिक तथा जैविक गुणों में हुए परिवर्तन को प्रदूषण कहते हैं।

ऐतिहासिक अवलोकन

पर्यावरण की अवधारणा कोई नई नहीं है, बल्कि यह प्राचीनकालीन है। प्राचीन काल में पर्यावरण समस्या के रूप में नहीं था बल्कि यह एक सहचर के रूप में था, जिसके परस्पर-संबंध का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों – वेद, पुराण तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों में मिलता है। वायु, जल, देश तथा काल की अवधारणा प्राचीन है, जब मनुष्य की आवश्यकता भोजन, वस्त्र तथा आवास तक सीमित थी। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य पर्यावरण के साथ समन्वय कर सुखमय जीवन-यापन करता था। पर्यावरण के स्वभाव के अनुरूप आचरण होता था जिससे किसी प्रकार का संकट पैदा नहीं होता था। उपर्युक्त संतुलन सिंधु घाटी की सभ्यता से लेकर 1900 ईसवी तक चला। मुगलकालीन शासन में वृक्षारोपण तथा जलाशय इत्यादि के निर्माण पर्यावरण संतुलन का ही प्रयास माना जा सकता है। वृक्ष की पूजा का प्रचलन आदिकाल से पर्यावरण के संरक्षण की भावना से प्रेरित था। ऋग्वेद में अहिंसा का वाक्य "अजां मा हिंसी। गां मा हिंसी।" जैविक पर्यावरण संतुलन का भाव है। महाकवि तुलसीदास के शब्दों में "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंच रचित यह अधम सरीरा।" पर्यावरण के तत्वों की समीक्षा है।

जब जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ औद्योगिक क्रांति का दवाब पर्यावरण पर पड़ा तब पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने लगा तथा इसके दुष्प्रभाव महामारी तथा अन्य रूपों में दिखाई पड़ने लगे। ईसवी 1850 के आस-पास विश्व के वैज्ञानिकों की दृष्टि इस ओर आकर्षित हुई। प्रयोगशालाओं में जीवों के परस्पर संबंध तथा अन्य कारणों की समीक्षा तथा खोज होने लगी जो आजतक जारी है। प्रतिवर्ष 5 जून को पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है जिसमें पर्यावरण के संरक्षण की जागरूकता पैदा की जाती है।

भारतवर्ष विविधताओं का देश है। यहाँ की प्राकृतिक विविधता बहुत अधिक है। इन्हीं कारणों से इसने संपूर्ण विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया है। विश्वभर से आने वाले सैलानी संपदाओं की लूटपाट के साथ इसके भौतिक बनावट से काफी छेड़छाड़ करते रहे। 1972 में टिहरी गढ़वाल के आदिवासियों के चिपको आंदोलन के क्रम में 1978 की पुलिस फायरिंग ने विश्व को एक बार चौंका दिया। यह मध्यप्रदेश, संथाल परगना तथा अन्य आदिवासी बहुल प्रदेशों में वन-संरक्षण की दिशा में एक सराहनीय प्रयास रहा। जून 1982 में विश्व पर्यावरण सम्मेलन (UNEP) लंदन में आयोजित किया गया। इसमें वृक्ष को इमारती लकड़ी का मुख्य स्रोत न मानकर इसे मिट्टी, जल तथा ऑक्सीजन के संरक्षण का स्रोत कहा गया।

पर्यावरण से छेड़छाड़ तथा प्रदूषण के दुष्प्रभाव ने उच्चतम न्यायालय को भी सोचने के लिए बाध्य कर दिया। न्यायालय का सन् 1991 में पर्यावरण संरक्षण के संबंध में एक निर्णय आया। तभी पर्यावरण कानून बना। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने पर्यावरण संरक्षण की दिशा में पहल करते हुए अध्ययन तथा शोध के लिए इसे एक विषय के रूप में भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाने का निर्णय लिया।

प्रदूषण : पर्यावरण का संतुलन प्रकृति के नियमों के अनुरूप स्वत: कायम रहता है। मनुष्य प्रकृति का सबसे विकसित जीव है लेकिन वही प्राकृतिक संसाधनों का सबसे अधिक दुरुपयोग तथा बर्बादी करता है, जिससे पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता है। प्रकृति में अनावश्यक पदार्थों के मिश्रण के कारण पर्यावरण असामान्य हो जाता है, जिससे जीवों का जीवन-यापन कठिन हो जाता है। इसी समस्या को प्रदूषण कहा जाता है। प्रदूषण आज एक विश्वव्यापी समस्या के रूप में सामने आ चुका है। प्रदूषण के कारण पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता है। प्रदूषण और पर्यावरण संबद्ध विषय हैं।

ओडम का कथन है कि "वायु, जल तथा मिट्टी में अप्राकृतिक परिवर्तन के कारण होने वाले प्राकृतिक संसाधनों का असंतुलन या बर्बादी ही प्रदूषण है।" (Odum-1971)

1966 में नेशनल साइन्स अकादमी द्वारा प्रसारित विचार-सूत्र के अनुसार– "हवा, जल तथा मिट्टी के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों में अप्राकृतिक परिवर्तन को प्रदूषण कहा जाता है।"

प्रदूषण की समस्या का आरंभ सन् 1900 से धीरे-धीरे हुआ। इसके पूर्व पर्यावरण प्रदूषण की विशेष समस्या नहीं थी। पहली बार 1949 में विश्व विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में इस समस्या पर विचार-विमर्श "Conservation and Utilization of Natural Resources" शीर्षक के अंतर्गत किया गया। उसके बाद 1972 में इस विषय पर Protect and Improve the Environment विषयक विश्वस्तरीय संगोष्ठी आयोजित हुई। भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने प्रदूषण नियंत्रण की आवश्यकता पर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। इस विषय पर बराबर चर्चा होती रही लेकिन अभी तक इसका पूरा निदान नहीं हो पाया है। भारत विविधताओं का देश है जहाँ सबसे अधिक प्रदूषण की समस्या है।

ओडम ने प्रदूषण को दो भागों में विभक्त किया है –

1. **अनिम्नकरणीय (Non degradable) :** ऐसे अनावश्क अपशिष्ट पदार्थ तथा रसायन जो प्रकृति में स्वत: विघटित नहीं होते हैं या बहुत धीरे-धीरे विघटित होते हैं, जिसके कारण ये पर्यावरण के तत्व— हवा, जल तथा मिट्टी को प्रभावित करते हैं तथा जैविक चक्र में सम्मिलित होकर दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं। सामान्य उपयोग के पोलिथीन बैग इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। औद्योगिक कचरे के रसायन भी इसी श्रेणी में हैं।

2. **निम्नकरणीय (Degradable)** घरेलू कचरा काफी तेजी से विघटित होता है। जब इनकी मात्रा बढ़ती है, तो प्रदूषण उत्पन्न होता है।

खासकर भारत-जैसे विकासशील देशों में प्रदूषण की समस्या अधिक बढ़ती जा रही है। बढ़ती हुई आबादी, औद्योगिक विकास तथा प्राकृतिक अनुशासन की कमी के कारण शहरों की आबादी लगातार बढ़ रही है। वर्तमान में पूरे विश्व की एक तिहाई जनसंख्या शहरों में रहती है। आगामी 2020 तक यह अनुपात आधा-आधा हो जाएगा। सभी कल-कारखाने शत-प्रतिशत शहरों में ही स्थापित हो

रहे हैं। इससे स्थान की उपलब्धता कम होने के साथ-साथ आबादी बढ़ती जा रही है। घरेलू कचरा, औद्योगिक कचरा एवं रसायन, कल-कारखाने तथा वाहन का धुआं एवं ध्वनि, कीटनाशी, रेडियोधर्मी पदार्थ इत्यादि इसके मुख्य स्रोत हैं। इन्हीं स्रोतों से प्रदूषण फैलता है। प्रदूषण के कारण प्राकृतिक संसाधनों का क्षय, गंभीर बीमारियां, वायुमंडल का असंतुलन इत्यादि होते हैं।

मुख्य रूप से प्रदूषण के निम्न प्रकार विचारणीय हैं:

1. वायु प्रदूषण : सामान्य वायुमंडल में गैसों का मिश्रण, जलवाष्प तथा धूलकण होते हैं। इसमें ऑक्सीजन 20 प्रतिशत, नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, कार्बन डाइऑक्साइड 0.33 प्रतिशत तथा अन्य गैसें 1 प्रतिशत होती हैं। ऑक्सीजन जीवों के लिए प्राणवायु है जिससे शरीर की जैविक क्रिया संचालित होती है। ऑक्सीजन के कारण वायुमंडल के दिन-रात का ताप, बादलों का आवागमन, ध्वनि का संचरण तथा रेडियोधर्मिता से बचाव होता है। प्रकृति में पेड़-पौधों के कारण इसकी मात्रा संतुलित रहती है। औद्योगीकरण, आबादी में तेजी से वृद्धि और पेड़-पौधों तथा जंगलों के क्षेत्रों में लगातार कमी के कारण ऑक्सीजन की कमी होती जा रही है।

कल-कारखाने, घरेलू ईंधन तथा वाहनों का धुआं वातावरण को सबसे अधिक प्रभावित करता है। इन दिनों धुआं-रहित ईंधन की खोज तथा उपयोग के कारण कुछ हद तक वायु प्रदूषण कम किया गया है जो पर्याप्त नहीं है। जंगल के क्षय पर भी कानून बने हैं। आवश्यकता जागरूकता की है जिससे पेड़ों की कटाई रोककर इन्हें तेजी से विकसित किया जाए। "पेड़ जीवों का सहयोगी है। उसके द्वारा छोड़ा गया ऑक्सीजन हमारे जीवन के लिए उससे प्राप्त होने वाली लकड़ी से अधिक उपयोगी है" इस सोच को विकसित करना होगा।

वायु प्रदूषण का प्रभाव जीव-जंतु तथा पेड़-पौधों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ओजोन (O_3)के कारण मुंह की ग्रंथि प्रभावित होती है। सर दर्द तथा सांस लेने में तकलीफ होती है। नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_2)के कारण आँख तथा नाक में उत्तेजना, सांस लेने में कठिनाई तथा सांस की नली में क्षति (ब्रोंकाइटिस) होती है। कार्बनमोनो-ऑक्साइड (CO) के कारण श्वसनक्रिया प्रभावित होती है। सरदर्द के अतिरिक्त मुखग्रंथि की झिल्ली प्रभावित होती है। रक्त में लालकणों की कमी होती है जो सबसे अधिक घातक है। अकार्बनिक रसायन बेंजिन के यौगिक इत्यादि फेफड़े में कैंसर की बीमारी पैदा करते हैं। सल्फ्यूरिक अम्ल से दमा, ब्रोंक्राइटिस की बीमारी पैदा होती है। धूल कण बढ़ने से दमा, कफ, फेफड़े की बीमारी, मस्तिष्क रक्त स्राव (ब्रेन हैमरेज) जैसी समस्याएं पैदा होती हैं।

पेड़-पौधों पर इनके प्रभाव के कारण क्लोरोफिल की कमी से हरियाली खत्म हो जाती है। पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। इनका आकार छोटा हो जाता है तथा फल-फूल कम तथा छोटे आकार के हो जाते हैं।

वायु प्रदूषण की रोकथाम के लिए बेरियम के यौगिक का उपयोग वाहनों के ईंधन में किया जाना चाहिए। अब लेड मुक्त पेट्रोल का उपयोग किया जा रहा है। सी.एन.जी. का उपयोग काफी कारगर हो रहा है। पुराने तथा खराब इंजन की मरम्मत तथा उनके प्रयोग पर रोक होनी चाहिए। कल-कारखानों में धुआं-नियंत्रण प्रणाली का सख्ती से पालन होना चाहिए। उच्च क्षमता के स्थिर-वैद्युत छन्ने का उपयोग होना चाहिए। गोबर गैस का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में वायु प्रदूषण को कम करेगा। घरेलू तथा औद्योगिक कचरे का जमाव नहीं होना चाहिए।

किसी स्थान का सबसे सस्ता तथा सुंदर उपयोग खाली जगहों में वृक्ष लगाना है। इसके लिए जागरूकता की आवश्कता है।

जल प्रदूषण: जल ही जीवन है। प्राणियों तथा वनस्पतियों के जीवन-यापन के लिए जल नितांत आवश्यक है। जल का उपयोग जीवों तथा पेड़-पौधों की जैविक क्रिया के अतिरिक्त यातायात तथा विद्युत् उत्पादन में मुख्य रूप से किया जाता है। जल के स्रोत नदी, कुआं, तालाब, झील-झरना इत्यादि हैं। नदी तथा जलाशय जल के प्राचीन स्रोत हैं। प्राचीन काल से इन नदियों का धार्मिक महत्व वेदों, पुराणों

में मिलता है, जिससे इसके संरक्षण का भाव स्पष्ट है। जल में घुलनशील ऑक्सीजन मुख्य रूप से हमारी जैविक क्रिया के लिए आवश्यक है। इसकी कमी के कारण जल प्रदूषण होता है। सभी स्रोतों में जल वर्षा के कारण प्राप्त होता है। इसमें प्रति लिटर ऑक्सीजन की मात्रा लगभग 10 मिलिग्राम होती है। नदियों के उद्‌गम स्थल पर (हरिद्‌वार में गंगा के जल में) यह मात्रा पाई जाती है लेकिन बंगाल की खाड़ी तक पहुँचने पर इसमें ऑक्सीजन की मात्रा प्रति लिटर 2-3 मिलीग्राम पाई गई है। यही स्थिति अन्य नदियों की है। ऑक्सीजन की कमी के कारण इसमें निवास करने वाले विभिन्न प्रकार के जीव-जंतु तथा पेड़-पौधे विलुप्त हो रहे हैं, जिससे जल-प्रदूषण हो रहा है।

औद्‌योगिक क्रांति के कारण शहरों की आबादी बढ़ रही है। नदियों तथा जलाशयों में घरेलू कचरा, औद्‌योगिक कचरा तथा नालियों का प्रवाह बेधड़क जारी है, जो जल-प्रदूषण उत्पन्न कर रहा है। गंगा नदी को हिंदू धर्म में देवी का स्थान दिया गया है। जगद्‌गुरू शंकराचार्य से लेकर आजतक के चिंतक दार्शनिक, ऋषि-मुनि, विद्‌यापति, तुलसी, पद्‌माकर, भारतेंदु, हरिऔध आदि कवियों ने गंगा को पवित्र पापहरिणी के रूप में स्थापित किया है। गंगा में स्नान करने तथा इसका जल पीने से सभी कष्टों से निदान की बात कही गई है। महाकवि तुलसीदास ने कहा है: ''गंग सकल मुद मंगल मूला, सब सुख करनि हरनि सब सूला'' यही गंगा आज हमारे लिए प्रदूषण के कारण पापहरिणी से कष्टदायिनी के रूप में स्थापित हो रही है। यह पूरे उत्तर भारत का कूड़ादान बन चुकी है। धार्मिक प्रतिबद्‌धता के कारण इसका जल स्पर्श तथा स्नान तक सीमित हो गया है। नदियों के प्रदूषण का एक और प्रमुख कारण इस पर बांधों का निर्माण है। जैसे– गंगा नदी पर निर्मित फरक्का बांध। आज इसमें स्वाभाविक तेज प्रवाह नहीं होने के कारण इसकी गहराई घटती जा रही है जिससे पर्यावरण संतुलन के लिए आवश्यक जीव-जंतु विलुप्त हो रहे हैं। आज गंगा जल का अपवित्र और दूषित होना चिंतनीय विषय चुका है। अन्य नदियों तथा जलाशयों की भी यही स्थिति है। किसी हद तक पीने के पानी की तथा दैनिक उपयोग की आवश्यकता गहरे भू-बेधन (डीप बोरिंग) से पूरी हो रही है, लेकिन वर्षा कम होने से भू-गर्भ का जलस्तर तेजी से नीचे खिसक रहा है। यदि हम समय रहते सचेत नहीं हो सके तो पानी की कमी की समस्या भयंकर रूप धारण कर लेगी।

जल प्रदूषण के निराकरण के उपायों में सबसे पहले सामाजिक स्तर पर चेतना जागृत करनी होगी जिससे जलाशयों तथा नदियों को नाली तथा कूड़ादानों, दाह-संस्कार तथा मृत जानवरों का प्रवाहस्थल बनाए जाने से रोका जा सके। कल-कारखानों के रसायन-मिश्रित जल को शोधित करके ही नदियों में प्रवाहित किया जाए। इसमें गाद भरने से रोका जाए। जल में रहने वाले जीव-जंतुओं तथा पौधों और शैवाल इत्यादि का संरक्षण तथा विकास किया जाए।

मृदा प्रदूषण : प्रत्येक जीव-जंतु तथा पेड़-पौधों का जीवन-यापन धरती पर होता है। इसकी प्राकृतिक बनावट हमारी प्रकृति के अनुरूप होती है। मिट्‌टी से हमें भोजन, जल, जंगल, खानों-खनिजों तथा अन्य जीवन-रक्षक वस्तुएं प्राप्त होती हैं। यह मनुष्य तथा मनुष्य के आस-पास के जीव-जंतु तथा पेड़-पौधों के लिए आवश्यक होती है। बढ़ती हुई आबादी तथा औद्‌योगिक विकास के कारण मिट्‌टी की बनावट में अप्राकृतिक बदलाव का होना मृदा प्रदूषण कहलाता है।

मृदा प्रदूषण का सीधा संबंध वायु तथा जल प्रदूषण से है। वायु प्रदूषण के घटक वर्षा के जल के साथ घुलकर जल प्रदूषण के रूप में मिट्‌टी में प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। इसी क्रम में अम्ल वर्षा की चर्चा हो रही है। मिट्‌टी के प्रदूषण के कारण पौधों के लिए आवश्यक तत्वों की कमी हो रही है, जिससे भोजन में ये तत्व हमें नहीं मिल पाते हैं। अधिकतर बीमारियां इन्हीं तत्वों की कमी के कारण हो रही हैं।

खेतों में रासायनिक खादों तथा कीटनाशियों का अधिक उपयोग भी मिट्‌टी में प्रदूषण उत्पन्न करता है। ये रसायन तथा कीटनाशी भोजन के द्वारा शरीर में पहुंचकर बीमारी पैदा करते हैं। इससे ग्रंथियों के स्राव में असंतुलन पैदा होता है। कैंसर जैसी घातक बीमारी इसी कारण होती हैं।

इसकी रोकथाम के लिए रसायन तथा कीटनाशियों का सीमित उपयोग करना पड़ेगा। वायु तथा जल प्रदूषण पर नियंत्रण से मिट्‌टी का प्रदूषण स्वत: कम हो जाएगा।

ध्वनि प्रदूषण : अनावश्यक तीव्र व कर्कश ध्वनि की उत्पत्ति से ध्वनि प्रदूषण होता है। यह समस्या शहरी क्षेत्रों में अधिक है। इसके कारण मानसिक तनाव के साथ बहरेपन की बीमारी भी हो जाती है।

इसकी रोकथाम के लिए पत्तेदार घने वृक्षों का तेजी से विस्तार करना होगा। पत्तेदार वृक्ष ध्वनि को अवशोषित करते हैं, जिससे ध्वनि प्रदूषण घटता है। सड़क के किनारे तथा कल-कारखानों के आसपास घने जंगल लगाए जाएं। वाहनों, कल-कारखानों में ध्वनि अवशोषकों का उपयोग किया जाए।

तापीय तथा रेडियोधर्मी प्रदूषण : सूर्य ऊष्मा का प्राकृतिक स्रोत है। पृथ्वी दिन में सूर्य की ऊष्मा अवशोषित करती है जो रात में विकिरण के द्वारा उत्सर्जित होती है। यही ऊष्मा संचरित होने के बजाय वापस पृथ्वी पर लौटती है जिससे पृथ्वी का ताप सामान्य से अधिक हो जाता है। ताप बढ़ने से जीव-जंतुओं तथा पेड़-पौधों का जीवन-यापन कठिन हो जाता है। उसका सीधा संबंध वायु प्रदूषण से है। वायु प्रदूषण के नियंत्रण से यह स्वत: नियंत्रित हो जाएगा। वायु प्रदूषण के कारण पृथ्वी के ओजोन परत में छिद्र होने से सूर्य तथा अन्य ग्रहों के तीक्ष्ण रेडियोधर्मी विकिरण के पृथ्वी पर पड़ने की आशंका बढ़ती जा रही है। यह विकिरण जीव-जंतु तथा पेड़-पौधों के लिए घातक है। यह भी वायु प्रदूषण से जुड़ा है। वायु प्रदूषण के नियंत्रण से इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृतिक नियमों में प्रतिकूल छेड़छाड़ से पर्यावरण की हवा, जल, मिट्‌टी के संतुलन में गड़बड़ी उत्पन्न होती है। इसी गड़बड़ी को प्रदूषण कहते हैं। प्रदूषण पर नियंत्रण कर पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है। इसके लिए जागरूकता की आवयकता है। महज कानून बनाकर इसे नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।

❁❁❁

13

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली प्रयोग

• डॉ. क्षमा शंकर पांडेय

भाषा का कलेवर शब्दों की आधार-भित्ति से निर्मित है। शब्दों का प्रयोग एवं ग्रहण, अर्जन या वर्जन मन, मन:स्थिति, विषय एवं परिस्थिति सापेक्ष होता है। उदाहरणार्थ उन्मुक्त दार्शनिक शब्दावली में तकनीकी विषय का विवेचन संभव नहीं है या शुद्ध शृंगारिक मन:स्थिति में चितंनपरक शब्दावली प्रयुक्त नहीं हो सकती। समय, समाज एवं परिस्थितियाँ ही शब्दों को प्रचलन में लाती भी हैं और चलन से बाहर भी करती हैं। इसके उदाहरण जीवन एवं व्यवहार में बराबर देखे जा सकते हैं। आज इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि हमारा समय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी द्वारा नियंत्रित समय है। इस बदलाव ने हमारी शिक्षा-दीक्षा, सोच, आचार-व्यवहार, चाल-ढाल सब में परिवर्तन ला दिया है। आज वैज्ञानिक परिघटनाएँ, प्रयोग, उपयोग, दुरुपयोग आदि सब हमारी दैनिक चर्चा में सम्मिलित हैं। फलत: कभी जीवन और व्यवहार से दूर रहे वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्द आज हमारी बोली-बानी में आ रहे हैं। उदाहरण के लिए विकास की अंधी दौड़ में सम्मिलित विश्व के सामने पर्यावरण प्रदूषण एक भयावह संकट एवं चुनौती है। ऐसे में सी.एफ.सी. (क्लोरोफ्लोरोकार्बन) या ओजोन लेयर में छेद बच्चों और पढ़े-लिखों की चर्चा से होता हुआ आम चर्चा में आ चुका है। इसी तरह परमाणु-विस्फोट या परमाणु-परीक्षण पर व्यापक स्तर पर होने वाली चर्चाओं ने इससे जुड़े वैज्ञानिक शब्दों को जीवन में प्रविष्ट कराया है।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के उपयोग पर विचार करते हुए समसामयिक वैज्ञानिक लेखन को देखने के बाद जो पहला तथ्य सामने आता है वह यह कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा गहन विचार मंथन के बाद तय की गई शब्दावली हमारे मानक वैज्ञानिक लेखन, चिंतन एवं व्यवहार का अनिवार्य अंग नहीं बन पा रही है। आज भी विज्ञान लेखक इस द्वंद्व में होते हैं कि क्या हम वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों को ज्यों का त्यों ग्रहण करें या वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित हिंदी शब्दों का प्रयोग करें या इनमें से जो भी हमारी भाषिक प्रकृति के अनुकूल हो उसे ग्रहण करें। वस्तुत: अब समय आ गया है जब सभी हिंदी विज्ञान-लेखकों को यह प्रयास करना होगा तकनीकी शब्दावली की एकरूपता, मानकता और सभी हिंदी भाषी राज्यों में शब्दावली की पूर्ण समानता के लक्ष्य को ध्यान में रखकर एक ही मानक संदर्भ-बिंदु या स्रोत से प्राप्त शब्दावली (अर्थात शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित) का प्रयोग विज्ञान लेखन में किया जाए। शब्दों के संदर्भ में एक बात स्पष्ट रूप से जान लेनी चाहिए कि शब्दों का भी अपना जीवन होता है, अपनी संस्कृति होती है और होती है अपनी परंपरा। इसके अतिरिक्त शब्दों के संदर्भ में प्रयोग ही प्रमाण होता है। जीवन एवं प्रयोग से कट कर शब्द किस तरह हाशिए पर जाते हैं, इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। इलेक्ट्रिसिटी के लिए हिंदी में विद्युत् एवं बिजली दोनों ही प्रचलन में है, पर हमारी बोली में 'बिजली' अधिक सम्मिलित है। ऐसे में आम प्रयोग में विद्युत् के इस्तेमाल का आग्रह भाषा को निर्जीव करना ही होगा। किंतु विद्युत्मापी (इलेक्ट्रोमीटर), विद्युत् चुंबकीय (इलेक्ट्रोमैग्नेटिक) आदि तकनीकी प्रयोग में 'विद्युत्' का ही प्रयोग अपेक्षित होगा। शब्दों के संदर्भ में एक बात स्पष्ट रूप से जान लेनी चाहिए। इसी प्रकार यदि 'अणु' और 'परमाणु' हमारी भाषा में प्रचलन में आ चुके हैं, तो 'मॉलिक्यूल' और 'एटम' को ज्यों का त्यों ग्रहण करने का कोई औचित्य नहीं है।

शब्दावली के उपयोग एवं ग्रहण के संदर्भ में एक बिंदु जो विचारणीय है वह यह कि भाषा की शाब्दिक समृद्धि की परीक्षा पाठ्यक्रमिक, अकादमिक या अनुवादपरक लेखन में नहीं होती। उसकी वास्तविक परीक्षा होती है जीवन से जुड़े हुए कार्य-व्यापारों के प्रयोग में आ रही भाषा में, लोकप्रिय एवं जनप्रिय वैज्ञानिक लेखन में, तथा आम आदमी को वैज्ञानिक विषयों के बारे में सुगमतापूर्वक बताने या समझाने में। वही इन शब्दों की सच्ची प्रयोगशाला है। जो शब्द निकष पर खरे उतरते हैं, वे बचते हैं, शेष प्रचलन से बाहर हो जाते हैं। आज का समय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों के उपयोग की दृष्टि से अत्यंत उर्वर है। इस तथ्य को हिंदी में हो रहे वैज्ञानिक लेखन के माध्यम से समझा जा सकता है। आज इस लेखन की एक अलग पहचान बनी है। यह लेखन विभिन्न विधाओं में हो रहा है। यथा- ललित निबंध, विज्ञानकथा, विज्ञान उपन्यास, विज्ञान कविता, जीवनी, साक्षात्कार, संस्मरण, रिपोर्ताज, पत्र, डायरी, समीक्षा, संपादकीय, नाटक, रेडियोवार्ता, रेडियोरूपक, साइंटून, यात्रा-विवरण तथा पाठ्यक्रमिक एवं अकादमिक लेखन। यह लेखन हिंदी भाषा में विज्ञान एवं वैज्ञानिक विषयों तथा अवधारणाओं को आधार बना कर हो रहा है। निश्चय ही वैज्ञानिक शब्दावली के उपयोग का यह बहुत बड़ा क्षेत्र है। इसी के साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी सिद्धांतों, चिंतन, अनुप्रयोग एवं सतत विकास को अपनी भाषा में प्रस्तुत करने की वृहत्तर चुनौती आज भी सामने है। पर दुर्भाग्य यह है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन मात्र अनुवाद होकर रह गया है, जिसमें काया तो है पर प्राण नहीं है। मेरी समझ में इसका बड़ा कारण यह है कि भाषा का जानकार विज्ञान और तकनीक से अपरिचित है और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विद्वान शब्दों और शब्दों की आत्मा तक सही ढंग से नहीं पहुँचता। फलत: हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार के प्रयास वांछित फल प्राप्त नहीं कर सके हैं।

हिंदी में विज्ञान-लेखन से जुड़े रचनाकारों ने यद्यपि साहित्य से जुड़ी लगभग सारी विधाओं में वैज्ञानिक लेखन किया है, पर वहाँ भाषा मात्र माध्यम बन कर रह गई है। सच तो यह है कि सर्जनात्मक लेखन, जिस प्रकार के चिंतन और चिंतन के रूपांतरण की माँग करता है वह नहीं हो पा रहा है। केवल सिद्धांत कथन या परिचयात्मक लेखन से सर्जनात्मक ललित लेखन नहीं हो पाता। पर इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस लेखन ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के उपयोग के गवाक्ष खोले हैं। जैसे-जैसे हमारे जीवन-व्यवहार, सोच-समझ आदि में विज्ञान की भागीदारी बढ़ रही है, उससे जुड़े हुए शब्दों की आमद बढ़ रही है वैसे-वैसे यह प्रक्रिया निरंतर आगे बढ़ रही है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्द जीवन की संवेदना, व्यवहार और साँस से जुड़े होते हैं, वे भाषा को तो समृद्ध करते ही हैं अभिव्यक्ति को भी धारदार बनाते हैं। अंतरानुशासनिक अध्ययन के बढ़ते युग में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली की उपयोगिता निरंतर बढ़ रही है।

अस्तु, आज की आवश्यकता के अनुरूप वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि, वैज्ञानिक सोच एवं अध्ययन को स्वीकार करते हुए आश्वस्त हुआ जा सकता है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्द हमारे जीवन एवं व्यवहार के हर क्षेत्र में उपादेय होंगे और इनके अधिकाधिक उपयोग का अर्थ होगा ज्ञान-विज्ञान में प्रगति।

ooo

14

विज्ञान-समाचार

• डॉ. दीपक कोहली

सबसे मजबूत नैनो कागज

क्या आप एक कागज की थैली में पानी को रखने की सोच सकते हैं? यकीनन, आप ऐसा नहीं कर सकते। अगर आप साधारण कागज का इस्तेमाल करें तो यह गीला होकर फट जाएगा और पानी बह जाएगा। लेकिन अगर आप 'नैनो कागज' का प्रयोग करें तो इस कारनामे को अंजाम दे सकते हैं।

स्वीडन के रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, स्टॉकहोम में लार्स बेरग्लंड के नेतृत्व में शोधकर्ताओं के एक दल ने कागज को उसके रेशों के आकार को घटाकर मजबूत बनाने की विधि का विकास किया है। यह पदार्थ, जो सैलुलोज के नैनो आकार विस्कर्स यानी नैनोरेशों से बना है, परंपरागत कागज की तुलना में हल्का होने के साथ ही अत्यंत मजबूत भी है। सैलुलोज से नैनोरेशों के निर्माण के लिए बेरग्लंड और उनके सहयोगियों ने पानी में काष्ठ लुगदी के विघटन के लिए पहले उसमें एंजाइमों को मिलाया और फिर बीटिंग प्रक्रिया का उपयोग किया। इस तरह से प्राप्त उत्पाद में दोषमुक्त नैनोरेशे मौजूद थे। ये रेशे प्रारूपिक सैलुलोज रेशों से लगभग एक हजार गुना अधिक सूक्ष्म थे। अंतिम चरण के रूप में शोधकर्ताओं ने इन नैनो-रेशों को कार्बोक्सी मेथेनॉल के साथ अभिक्रियित किया जिससे ये रेशे कार्बोक्सिल समूहों से विलेपित हो गए। ये समूह आसानी से हाइड्रोजन बंधों की सृष्टि करते हैं, जो इन रेशों को एक-दूसरे से मजबूत संबंध बनाने और इस तरह पदार्थ को और मजबूती प्रदान करने में मदद करते हैं। रूपांतरित रेशों से बनाए गए कागज का तनन-सामर्थ्य 214 मेगापास्कल पाया गया जो 130 मेगापास्कल तनन-सामर्थ्य वाले ढलवां लोहे तथा 103 तनन सामर्थ्य का पुराना रिकार्ड रखने वाले कागज की तुलना में कहीं अधिक था। शोधकर्ताओं के अनुसार, कागज के उत्पादों को सीधे मजबूती प्रदान करने के अलावा सैलुलोज के नव-निर्मित नैनोरेशों से कार्बन रेशों द्वारा प्रबलित पदार्थों की तुलना में कहीं कम लागत वाले प्रबलित सम्मिश्र बनाए जा सकेंगे।

कृत्रिम अस्थि-मज्जा का विकास

रासायनिक इंजीनियरों को ऐसा आधार (स्कैफोल्ड) बनाने में सफलता मिली है जो असली अस्थि-मज्जा की प्रतिकृति जैसा है। इससे अनुसंधानकर्ताओं को रक्त कोशिकाएं निर्मित करने और औषध-परीक्षण प्रक्रिया को आसान बनाने में मदद मिलेगी। यह पदार्थ ऐसे त्रिविमीय आधार पर विकसित होता है, जो शरीर की अस्थि-मज्जा की प्रतिकृति जैसा है। कृत्रिम अस्थि-मज्जा को मिशिगन विश्वविद्यालय में पदार्थ तथा जैव आयुर्वैज्ञानिक इंजीनियरी के प्रोफेसर, निकोलस कोटोव द्वारा विकसित किया गया है।

अस्थि-मज्जा एक जटिल पदार्थ है जिसकी प्रतिकृति होना कठिन है। कोटोव के अनुसार, इस कार्य के लिए स्कैफोल्ड ऐसे पदार्थ से बनाना पड़ा जो प्राकृतिक अस्थि-मज्जा की एकदम प्रतिकृति जैसा ही लगे क्योंकि इस तरह के समुचित व्यावहारिक आधार उपलब्ध नहीं हैं। इस आधार को बनाने के लिए कोटोव ने ऐसा पॉलिमर इस्तेमाल किया, जिससे पोषक पदार्थ आराम से गुजर सकें। पहली सफल कृत्रिम अस्थि-मज्जा में सामान्य जैव मज्जा के दो आवश्यक लक्षण पाए गए हैं। पहला, यह रक्त की मूल (स्टेम) कोशिकाओं की प्रतिकृति बना सकती है और बी कोशिकाएं

4952 HRD/10—8

लेखक-परिचय

1. **डॉ. भृगुनंदन प्रसाद सिंह**
स्नातकोत्तर भौतिकी विभाग
ति. मां. भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर – 812007

2. **डॉ. विजयकुमार उपाध्याय**
राजेंद्रनगर, कृष्णा एन्क्लेव
पो. जमगढ़िया, बरास्ता जोधाडीह
बोकारो, झारखंड – 827013

3. **डॉ. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी**
157 बाघंबरी योजना
इलाहाबाद – 211066

4. **डॉ. आर. एस. सेंगर**
सह प्रोफेसर, सरदार वल्लभभाई पटेल
कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
मेरठ – 250110 (उ.प्र.)

5. **श्री नवनीत कुमार गुप्ता**
सी-24, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली – 110016

6. **श्री जगनारायण** एवं
7. **सुश्री मधु ज्योत्स्ना**
ईशान स्टूडियो
श्री विश्वनाथ मंदिर
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी- 221005

8. **श्री शिवप्रताप सिंह**, शोध छात्र
9. **श्री धर्मेंद्रपाल सिंह**, शोध छात्र, एवं
10. **डॉ. शिवपाल सिंह**
डी.बी.एस कालेज
देहरादून (उत्तरांचल)

11. **डॉ. ए. के. चतुर्वेदी**
26 कावेरी एन्क्लेव फेस II,
स्वर्ण जयंती नगर के पास
रामघाट रोड, अलीगढ़ – 202001 (उ.प्र.)

12. **डॉ. जे. एल. अग्रवाल**
3, ज्ञान लोक, मयूर विहार
शास्त्रीनगर, मेरठ 250004 (उ.प्र.)

13. **श्री ईश्वर चंद्र शुक्ल,**
श्री बृजेश कुमार सिंह एवं
श्री विनोद कुमार
रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद – 211002 (उ.प्र.)

14. **डॉ. नवीन कुमार बौहरा**
प्लॉट 389, गली नंबर 10
मिल्कमैन कॉलोनी
पाल रोड, जोधपुर (राजस्थान)

15. **डॉ. राजकुमार साह**
अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग
एस. एस. बी. कॉलेज,
कहलगांव, भागलपुर (बिहार)

16. **डॉ. क्षमाशंकर पांडेय**
रीडर-अध्यक्ष, हिंदी विभाग
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
ज्ञानपुर, संत रविदास
भदोही (उ.प्र.)

17. **डॉ. दीपक कोहली**
5/104, विपुल खंड,
गोमती नगर
लखनऊ – 226010

आयोग के प्रकाशन

शब्दसंग्रह, शब्दावलियाँ

भौतिकी	
भौतिकी शब्द संग्रह	119.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	45.00
इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश	22.00
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
गृह विज्ञान	
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह	600.00
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्यागिकी	
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली	57.00
कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश	102.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00
रसायन	
रसायन शब्द संग्रह	592.00
इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली	55.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00
रक्षा	
समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
गुणता नियंत्रण	
गुणता नियंत्रण शब्दावली	38.00
भाषा विज्ञान	
भाषा विज्ञान शब्दावली (अेग्रजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	113.00
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 1)	89.00
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 2)	59.00
जीव विज्ञान	
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह	381.00
प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00
सूक्ष्म जैविकी परिभाषा कोश	45.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
लोक प्रशासन	
लोक प्रशासन शब्दावली	52.00
गणित	
गणित शब्द-संग्रह	143.00
गणित परिभाषा कोश	203.00
सांख्यिकी परिभाषा कोश	18.00
भूगोल	
भूगोल शब्द-संग्रह	200.00
भूगोल परिभाषा कोश	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश	18.00
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
अनुप्रयुक्त विज्ञान	
प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
वानिकी शब्द-संग्रह	440.00
मनोविज्ञान	
मनोविज्ञान परिभाषा कोश	9.50

4952 HRD/10—9 A

मनोविज्ञान शब्दावली	247.00
इतिहास	
इतिहास परिभाषा कोश	20.50
प्रशासन	
प्रशासन शब्दावली	20.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) प्रकाशनाधीन	
शिक्षा	
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-1	13.00
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-2	99.00
आयुर्विज्ञान	
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान)	338.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
समाज शास्त्र	
समाज कार्य परिभाषा कोश	16.25
समाज-शास्त्र परिभाषा कोश	71.40
नृविज्ञान	
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह	
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 1	87.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 2	87.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान (हिंदी-अंग्रजी)	236.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड 1,2	292.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, कृषि विज्ञान	278.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान : आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान	239.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: मुद्रण इंजीनियरी	48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिकी)	340.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: प्राणि विज्ञान	311.00
भू-विज्ञान	
भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
भूभौतिकी शब्दावली	67.00
शैलविज्ञान शब्दावली	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश	63.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
शैलविज्ञान परिभाषा कोश	153.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द-सग्रह	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्दसंग्रह जीवाश्मविज्ञान शब्दावली	129.00
कृषि	
रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह	50.00
कृषि कीटविज्ञान परिभाषा कोश	125.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदाविज्ञान परिभाषा कोश	77.00

4952 HRD/10—9 B

इंजीनियरी	
रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह	51.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश	94.00
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	10.00
वनस्पति विज्ञान	
वनस्पति विज्ञान शब्द-संग्रह	86.00
वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	80.00
दर्शनशास्त्र	
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 1)	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 2)	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 3)	136.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
पुस्तकालय विज्ञान	
पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश	49.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	12.25
पुरातत्व विज्ञान	
पुस्तकालय विज्ञान शब्दावली	
पुरातत्वविज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला	
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	343.00
प्रबंधविज्ञान परिभाषा कोश	170.00
अर्थशास्त्र	
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश	117.00
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
अन्य	
अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एंव टेलीविजन परिभाषा कोश	200.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली	75.00

संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
समुद्री यात्राएं	79.00
विश्व दर्शन	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन	53.00
कोयला : एक परिचय	425.00
रत्न विज्ञान : एक परिचय	115.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन	23.00
भारत में गैस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धन राशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नही होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नही होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, (शहरी मामले व रोजगार मंत्रालय), सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

4952 HRD/10— MGIPRRND—1000 Copies

© भारत सरकार
प्रकाशन-नियंत्रक
जनवरी–मार्च-2010

पी. सी. एस. टी. टी. (1-3) 10
1,000

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2011